चन्दामामा
अप्रैल १९८८
2.50

ग्लासों में रसना रहे

पार्टी में रंग जमा रहे!

अच्छी पार्टी में जोश-खरोश चलता रहे... सभी को रसना बराबर मिलता रहे. मज़ेदार! प्यास बुझानेवाला रसना! हर रसना पैक से पाइए ढेर सारे ग्लास! किसी का ग्लास खाली न होने पाए, रसना सबकी प्यास बुझाए, पार्टी में रंग जमाए... रसना.

पार्टी के लिए खूब मज़ेदार ग्यारह स्वादों में उपलब्ध

☐ ऑरेंज ☐ पाइनएपल ☐ लाइम ☐ शाही गुलाब
☐ काला-खट्टा ☐ कूल ख़स ☐ केसर इलायची
☐ मसाला सोडा (जलज़ीरा) ☐ टूटी फ्रूटी
☐ ग्रेप ग्लोरी ☐ मैंगो राइप

भा र त • का • स र्वा धि क • बि क ने वा ला
सॉ फ़्ट • ड्रिं क • कॉ न्से न्ट्रे ट

सदस्यता कूपन

मुझे अंकुर बाल बुक क्लब का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनी आर्डर/डाक टिकट के साथ भेजा जा रहा है। (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम ....

पिता का नाम ....

पता ....

डाकखाना .... जिला ....

डायमंड कामिक्स प्रा. लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

'चंदामामा' के पाठकों को निवेदन

अपाहिज़

यह शब्द बच्चों को पंगु बना सकता है !

मान लीजिए कि आप अपने जिगरी दोस्त के साथ दौड़ नहीं सकते। मानिये कि आपका कोई जिगरी दोस्त ही नहीं है। मानिये कि पोलिओ यह शब्द अथवा इस शब्द का अर्थ समझने के पहले ही आपको पोलिओ ने ग्रस लिया और आप जनम भर के पंगु बन गये।

हर साल भारत देश में २७५,००० बच्चों को पोलिओ पीड़ित करता है। शीघ्र प्रतिबंधक उपायों का अवलंबन न करने पर भारत के ग्रामीण क्षेत्र में हर १५०-२०० नये पैदा हुए बच्चों में से एक को पोलिओ होने की संभावना है, और यह पढ़ते समय ही इसका ध्यान कीजिये कि भारत में अभी—इसी क्षण—पोलिओ से पीड़ित और जनम भर के अपाहिज बने ऐसे १.३ मिलियन बच्चे हैं। इन सब को समय पर ही इस व्याधि से बचाया जाता तो ------------ ?

पोलिओ प्लस

'रोटरी' का सहायता कार्यक्रम

आंतरराष्ट्रीय रोटरी ने पोलिओ-विमुक्ति के हेतु पोलिओ प्लस नाम के एक विश्वव्यापी कार्यक्रम का आयोजन किया है। इस कार्यक्रम के तहत रोटरी विश्व के सभी देशों के बच्चों को लगातार पांच साल पोलिओ-प्रतिबंधक डोस देनेवाली है।

इसके अलावा हर साल प्रगतिशील विश्व के ३.५ मिलियन बच्चों को काल-कवलित करनेवाले खसरा, धनुर्वात, क्षय, घटसर्प और काली खाँसी जैसी सर्वसाधारण बीमारियों के लिये प्रतिबंधक उपाय किये जाएँ।

पोलिओप्लस

आंतरराष्ट्रीय रोटरी मुहिम

संसार के बच्चों को व्याधिमुक्त करने के हेतु

आप यह कर सकते हैं—

जी हाँ, मैं पोलिओप्लस कैंपेन ट्रस्ट की सहायता करना चाहता हूँ। इसके साथ रु. .... का चैक/ड्राफ्ट भेज रहा हूँ।

नाम ____________________

ओहदा ____________________

कंपनी का पता ____________________

फोन नंबर ____________________

चैक/ड्राफ्ट 'पोलिओप्लस कैंपेन ट्रस्ट' के नाम बनाये जाएँ जो मुंबई में देय हो। यह अनुदान १९६१ के आयकर कानून की धारा ८० (जी) के अनुसार करमुक्त है।

चन्दामामा

इस हिस्से को काटकर, निम्नलिखित पते पर रवाना करें।

चेअरमन
पोलिओ प्लस कैंपेन ट्रस्ट,
१२८ गोल्फ़ लिंक्स,
न्यू दिल्ली-११० ००३

"जब तक अधिक कुछ करने की क्षमता आप में है, तब तक जो किया - वह पर्याप्त नहीं है।" तुरन्त कार्यरत हों।
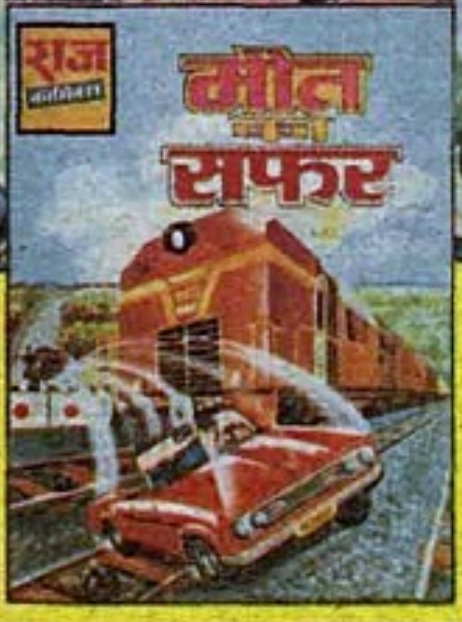
पुरस्कार जीतनेवाले स्पर्धकों को 'चन्दामामा' की बधाइयाँ !

२

धरणीधर साहू
शासकीय उच्च माध्यमिक शाला
गुण्डरदेही, जि. दुर्ग
(मध्य प्रदेश)

I Prize

महेन्द्र सिंह शेखावत
राजपूत कॉलनी, दुर्गापुरा
जयपुर - ३०२ ०१५
(राजस्थान)

II Prize

राजा भट्टाचार्य
४-इ-४३८
जयनारायण व्यास कॉलनी,
बिकानेर - ३३४ ००१
(राजस्थान)

III Prize

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

सभी मानवों का व्यवहार एक जैसा नहीं होता। इस का कारण उनका परिसर है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच संस्कारों की भिन्नता तथा इसके साथही मात्रा से अधिक स्वार्थपरायणता उन्हें गलत रास्ते पर ले जाती है। वे निराश होकर अन्त में दुख के शिकार हो जाते हैं। "करनी का फल" कहानी इस बात का उत्तम उदाहरण है।

अमर वाणी

आरंभगुर्वी क्षयिणी क्रमेण, लघ्वीपुरा वृद्धिमति च पश्चात्।
विनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना, छायेवमैत्री खलसज्जनानाम्।

[दुर्जनों के साथ के मित्रता के संबंध प्रातःकालीन छाया की भाँति प्रारंभ में विशाल होकर क्रमशः क्षीण होते जाते हैं। सज्जनों के संबंध मध्यान्ह के बाद की छाया की भाँति लघु मात्रा में आरंभ होकर क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होते हैं।]

वर्ष : ४०   अप्रैल १९८८   अंक : ८

एक प्रति : २-५० :: वार्षिक चन्दा : ३०-००

चंदा मामा बूझ के हारे–
छोटे छोटे, प्यारे प्यारे,
रंगबिरंगे कैसे तारे?
तारे नहीं, ये जेम्स हैं सारे.
Cadbury's GEMS
जो चाहे खेले, जो चाहे खाले.
Cadbury's GEMS
OBM/2286/HN

'चन्दामामा के संवाद'

बर्फ़ का विशाल टीला

४० कि.मी. चौड़ा और १५८ कि.मी. लम्बा एक विशाल बर्फ का टीला, अंटार्टिका हिमखण्ड से अलग होकर रास समुद्र में तैर रहा है। कहा जाता है कि किसी प्रकार इस टीले को लास एंजलस तक पहुँचा दिया जाय तो ६७५ वर्षों तक उस नगर की पानी की समस्या हल हो जाएगी।

एकाकी समुद्रीयात्रा

न्यूजर्सी की निवासी येबी नामकी २१ वर्षीय युवती ने दो साल पहले अपने पिता से प्राप्त एक छोटी सी नाव में अकेले ही समुद्री यात्रा प्रारंभ की। बेर्मुडा, पनामा, आस्ट्रेलिया, श्री लंका आदि देशों के बंदरगाहों का संदर्शन करके सुरक्षितता के साथ वह अपने नगर पहुँच गयी है।
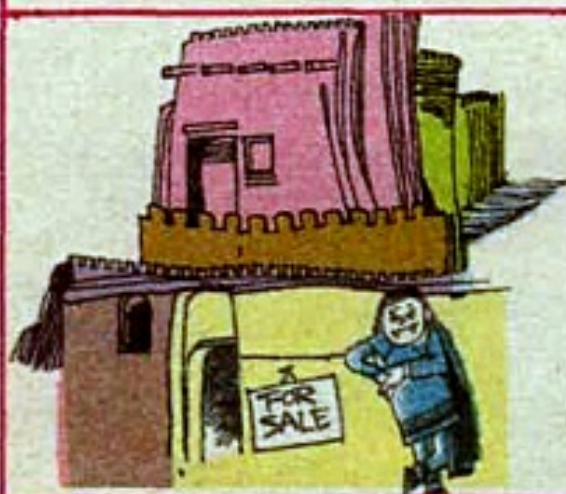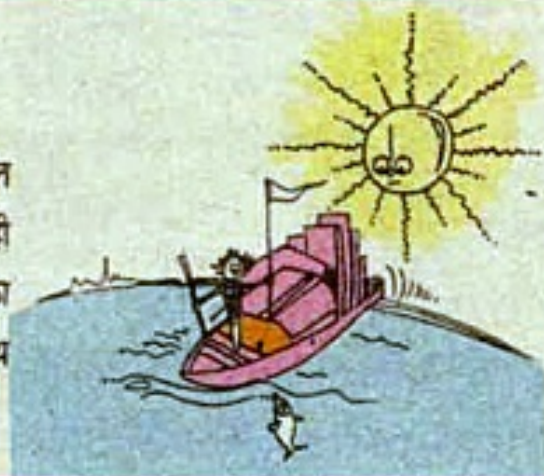
क्या आप खरीदेंगे ?

ब्राम स्टोकर द्वारा विरचित सुप्रसिद्ध उपन्यास है—'ड्राकुला'। इसमें वर्णित ड्राकुला पात्र का निर्माण रुमेनिया के व्लाड नामक राजतंत्रीय राजा के जीवन के आधार पर किया गया है। उसने जिस महल में अपना जीवन बिताया, वह इस वक्त बिक्री के लिये तैयार है।

चार मीनार की घटती शोभा

हैदराबाद में स्थित चार मीनार इमारत भारत में विख्यात है। ऐसा माना जाता है कि ४०० वर्ष पूर्व पुराने नगर में निर्माण की गयी यह अद्भुत इमारत वायुप्रदूषण तथा ध्वनिप्रदूषण के कारण भविष्य में अपनी शोभा से वंचित हो जाएगी।

आलसी

एक बुजुर्ग अपने रास्ते गुज़र रहा था। उसने एक पेड़ के नीचे, बिना कोई काम-धंधे के बेकार बैठे एक आलसी को देखा। उस को डाँटने के ख़याल से बुजुर्ग ने कहा,"अबे, तुम तो जवान हो। बेकार क्यों बैठे हो ? कोई काम-वाम तो करते !"

"काम करने से क्या फ़ायदा है ?" आलसी ने उलटा सवाल किया।

"पैसे मिलते हैं।" बुजुर्ग ने उत्तर में कहा।

"पैसे पाने के बाद क्या होगा ?" आलसी का फिर सवाल।

"तुम को क़ाबिल आदमी समझकर कोई अपनी कन्या के साथ तुम्हारा विवाह कराएगा।" बुजुर्ग ने कहा।

"शादी के बाद ?" आलसी पूछता ही रहा।

"बच्चे पैदा होंगे। उन के साथ तुम खेल सकते हो, गा सकते हो।" बुजुर्ग समझाता रहा।

"इसके बाद ?" आलसी ने ऊँचे स्वर में पूछा।

"बच्चे ज़रा बड़े हो जायेंगे। तब उन्हें पढ़ा-लिखाकर अच्छे नागरिक बनाना होगा।"—बुजुर्ग।

"फिर उसके बाद ?" आलसी का 'बाद-बाद' ख़तम ही नहीं हो रहा।

"वे कमाने लग जायेंगे। तब तुम निश्चिन्त होकर आराम कर सकते हो।" बड़ी सहनशीलता के साथ बुजुर्ग ने आगे कहा।

"तब तो इस वक्त भी मैं वही कर रहा हूँ न ? आप जा सकते हैं—मुझे सताओ नहीं।" आलसी ने कहा।

बुजुर्ग ने भी अब सोचा कि, इस आलसी को बदलना असंभव है, और उसने अपना रास्ता नापा।
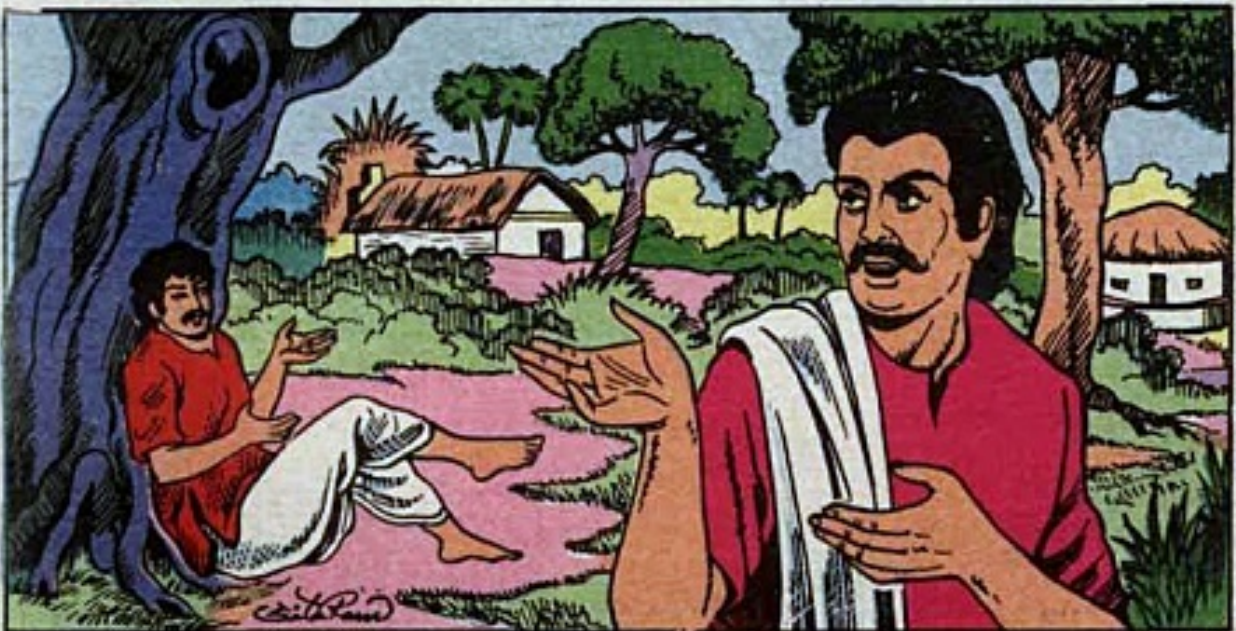
जादूगरनी का बदला

गौड देश के राजा गौरीनाथ का स्वभाव बहुत क्रोधी था । उसके लावण्या नामकी एक विवाह-योग्य कन्या थी । लावण्या 'यथार्थनामा' थी—बड़ी ही सुन्दर थी वह !

लावण्या के रूप-सौंदर्य के बारे में सुनकर अनेक राजकुमारों के मनमें उसके साथ विवाह करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई । मगर गौरीनाथ के स्वभाव के कारण हर कोई अपना प्रस्ताव रखने से हिचकिचा रहा था । बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधें ?

गौड देश के उत्तरी दिशा में एक घना जंगल था । उस जंगल में क्षुद्र शक्तियोंवाली एक बूढ़ी जादूगरनी रहती थी । उसके एक पुत्र था, जो अत्यंत कुरूप था । उसके मनमें एक दिन किसी बहुत रूपवती लड़की के साथ विवाह करने की इच्छा जागृत हुई । उसने माया-दर्पण में देखा कि गौड देश में सब से सौंदर्यवती लावण्या ही है । वह उसी क्षण जंगल से निकलकर राजा गौरीनाथ से जा मिला । बड़े साहसके साथ उसने राजा के सामने लावण्या के साथ विवाह की इच्छा प्रकट की । उसने राजा से कहा—"मैं कुरूप हुआ तो क्या हुआ ? मुझ में अद्भुत शक्तियाँ हैं । आप अपनी बेटी की शादी मुझ से करवा देंगे, तो उसे भी वे सब शक्तियाँ प्राप्त होंगी । आप खुद समझदार हैं । सोच-समझ कर निर्णय कीजिए ।

अगर आपने मेरा प्रस्ताव स्वीकृत नहीं किया, तो उस का अंजाम बहुत बुरा होगा । जनम भर पछताना पड़ेगा । आप पर वे मुसीबतें आएँगी, जिन की आप कल्पना भी नहीं कर सकते । ज़रा सी बात के लिए सर्वनाश निमंत्रण न दीजिएगा ।"

राजा तो वैसे ही क्रोधी था । तिसपर पहले पहल विवाह प्रस्ताव करनेवाला यह आदमी कुरूप ! राजाने आपेसे बाहर होकर उसको फाँसी

गणेश वर्मा

पर चढ़वाया ।

कई दिन व्यतीत हुए। अपने पुत्र के न लौटने पर बूढ़ी ने अपनी क्षुद्र शक्तियों के बल पर असली बात जान ली। पुत्र की मौत की बात जानकर वह असहनीय क्रोध में आ गयी। आधी रात के वक्त युवराज्ञी के महल में प्रवेश कर उसने गहरी नींद में डूबी युवराज्ञी को वहाँ से गायब कर दिया ।

अब बूढ़ी जादूगरनी ने राजा से प्रतिशोध लेना चाहा। अपनी शक्तियों से उसने युवराज्ञी को माया में डाल दिया। जंगल में एक स्थान पर उसने मंत्रपूरित रंगोली बनाकर एक लकीर खींची और लावण्या को वहाँ छोड़कर वह खुद जंगल के किसी और प्रदेश में रहनेवाली अपनी छोटी बहन के पास चली गयी ।

इधर युवराज्ञी को गायब देखकर राजा ने चारों दिशाओं में उसकी खोज करने के लिये गुप्तचरों को भेज दिया ।

उत्तरी दिशा में गये हुए गुप्तचर घायल होकर लौट आये, और बोले, "महाराज, युवराज्ञी को हमने जंगल में एक स्थान पर देखा। हमें देखते ही उन्होंने महाकाय रूप धारण किया और हम को मार-पीटकर घायल कर दिया। पता नहीं महाराज, युवराज्ञी को क्या हुआ है। हम ने उस को पहचाना कि वह युवराज्ञी लावण्या ही है। पर देखते देखते उस ने रौद्र रूप धारण किया। देखते ही हमारे दिल काँप उठे। वह हमारी ओर बढ़ी तो उस की ओर देखते तक नहीं बना। एक साथ हम सब को उस ने घायल कर दिया। दूर तक वह हमारा पीछा करती रही। ज्यों-त्यों जान बचाकर आप को समाचार देने आ सके। वरना आज मौत से सामना था !"

समाचार सुनकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह स्वयं जंगल में गया। उसने लावण्या को वहाँ देखा, मगर पिता को देखते ही उस से मिलने आगे आने के बजाय वह पीछे पीछे जाती रही। वह जैसे जैसे पीछे हटती रही, वैसे वैसे राजा आगे आगे सरकता रहा। लावण्या पीछे पीछे जाते हुए जब लकीर पार कर गयी, तब तुरन्त उसने महाकाय रूप धारण किया और वह राजा की ओर आगे बढ़ने लगी। उस के भयंकर रूप को देखकर राजा भयकंपित हो राजधानी

लौट पड़ा ।

राजा नगर को लौट तो आया, मगर अब वह गहरी चिन्ता में डूब गया । उसने मंत्रियों से मश्विरा करके ढिंढ़ोरा पिटवाया—जो युवक युवराज्ञी की रक्षा करेगा, उस के साथ उसका विवाह किया जाएगा ।

यह समाचार सुनकर कुछ ऐसे युवक उत्साह में आ गये, जो पहले से ही युवराज्ञी के साथ विवाह करने की इच्छा रखते थे । ऐसे युवक जंगल में गये और महाकाय रूप में स्थित लावण्या के हाथों मार खाकर लौट आये ।

राजधानी में ही विजयवर्मा नाम का एक युवक रहता था । उसकी माँ उसके बचपन में ही स्वर्ग सिधार चुकी थी । उसके पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था । विजय की सौतेली माँ उससे बहुत जलती थी । विजय बड़ा होने पर भी उसके विवाह का प्रयत्न न कर वह माँ विजय से छोटी उमरवाले अपने पुत्र के विवाह के लिये प्रयत्न करने लगी ।

कई लोगों ने उसकी इस बात पर आलोचना की । तब माँ ने ताने दिये—"क्यों ? विजय तो बड़ा ही अक्लमन्द और साहसी है, वह चाहे तो युवराज्ञी के साथ भी विवाह कर सकता है ।"

ऐसे ताने सुनकर विजय ज़िन्दगी से ऊब गया था । उसने निश्चय किया कि अपने जीने या मरने का फ़ैसला युवराज्ञी के हाथों में ही होना चाहिए—और वह जंगल की ओर चल पड़ा । विजय को देखते ही युवराज्ञी लकीर के उस पार

दौड़ती गयी और उसने महाकाय रूप धारण किया ।

यह देखकर उस समय तो विजय घर लौट पड़ा, लेकिन उसी दिन चांदनी रात में पुनः वह जंगल में चला गया । जिस जगह पर उसने लावण्या को देखा था उसी जगह चाँद के प्रकाश में उसने बारीकी से नज़र दौड़ाकर देखा । वहाँ रँगोली से खींची लकीर उसने देखी । उसने भाँप लिया कि युवराज्ञी के महाकाय रूप धरने का और इस लकीर का ज़रूर कोई संबंध है ।

विजय समीप के एक झरने के पास गया; पत्ते का दोना बनाकर उसमें जल भर लाया, और उसने वह लकीर पानी से मिटानी चाही । दो तीन बार धो डालने पर भी लकीर ज्यों कि त्यों बनी

रही ।

विजय कुछ समझ नहीं पा रहा था-क्या किया जाय । रात उसने वहीं एक पेड़ पर बिता दी । मंत्र फूंककर उस लकीर को मिटा सकनेवाला कोई वहाँ पास में ही होगा । तत्काल पेड़ पर से उतरकर वह चारों तरफ़ खोजने लगा ।

उसने एक जगह उजड़ी-उजड़ी जैसी एक झोंपड़ी देखी । झोंपड़ी के सामने एक चट्टान पर एक बूढ़ी औरत बैठी हुई थी । विजय ने सोचा, यह बूढ़ी ज़रूर जादूगरनी होगी; और वह उसकी ओर चल पड़ा ।

बूढी ने युवक को अपनी ओर बढ़ते देख पूछा,"बेटा, तुम कौन हो ?"

"नानीजी, मैं इस देश का राजा नहीं हूँ—मैं एक साधारण आदमी हूँ । तुम सब से पहले मंत्र फूँकी गयी उस लकीर को मिटा दो । अपनी पुत्री की दुरवस्था देख राजा चिंता के मारे खाट पकड़ चुके हैं ।" विजय ने कहा ।

"ओह, ऐसी बात है । मेरी बहन भी इस चिन्ता में घुल घुलकर हाल ही में अन्न-जल त्याग कर मर गयी कि राजा ने पुत्र को फाँसी पर चढ़ा दिया है ।" बूढ़ी ने दुखी स्वर में कहा ।

यह उत्तर सुनकर विजय आश्चर्य में आ गया और उसने कहा,"इसका मतलब है कि राजकुमारी लावण्या पर क्षुद्र शक्तियों का प्रयोग करके उसे इस जंगल में तुम नहीं लायी हो ?"

"हाँ बेटा, मैं नहीं लायी हूँ; मेरी बात पर विश्वास करो । मेरी बहन ने क्षुद्र शक्तियों की उपासना की थी और उसके बल पर ही उसने बेचारी राजकुमारी को यातनाओं का शिकार बनाया । अपने अंतिम दिनों में अपनी इस करनी पर वह बहुत पछताती रही ।"—बूढ़ी ने कहा ।

"यूँ ही पछताने से क्या फ़ायदा ? राजकुमारी को अपने दुष्ट मंत्रों के प्रभाव से मुक्त कर देती तो क्या ही अच्छा होता ।" विजय ने कहा ।

"इसके लिये मेरी बहन एक उपाय कह गयी है । ज़रा रुको, मैं अभी बता देती हूँ ।" बूढ़ी बोली । फिर थोड़ी देर अपने मन में गुनगुना कर कहा,"बेटा, ये मंत्र-तंत्र जाननेवाले लोगों की बातों का अर्थ निकालना मुझ जैसी के लिये संभव नहीं है । मेरी बहन मरने के पहले अपने अंतिम क्षणों में राजकुमारी को मंत्र-प्रभाव से

मुक्त करने की ज़िम्मेदारी मुझपर छोड़ गयी है। उसने राजकुमारी को मुक्त करने का यही रहस्य बताया—'तुम दो सौतोंमें से सिरपर बैठी औरत की कृपा की भिक्षा माँगो। मंत्र फूकी गयी रंगोली अपने आप मिट जाएगी।' मैं कई दिनों से सोच रही हूँ। लेकिन मेरी दीदी की बातों का मर्म मेरी समझ में नहीं आ रहा है।"

विजय थोड़ी देर सिर झुकाकर मौन रहकर सोचता रहा; फिर एकदम उत्साह में आकर बोला,—"नानीजी, तुम्हारी दीदी की बातों का मर्म मैं समझ गया। हमारे राज्य में होकर गंगा नदी बहती है न ? यहाँ से दस कोस से ज्यादा दूर नहीं है वह। वही है दो सौतों में से सिरपर बैठी औरत ! नानीजी, तुम्हारे घर में कोई बर्तन है ? ज़रा दे दो तो।"

"अरे बेटे, बर्तनों की क्या कमी ? पीतल, तांबे, काँसे..... ।" यह कहते हुए बूढ़ी चट्टान पर से उठकर खड़ी हो गयी।

विजय उस के पीछे उसकी झोंपड़ी में गया। एक ढक्कन और एक लोटा लेकर तुरन्त वह गंगा नदी की ओर चल पड़ा।

दूसरे दिन सूर्योदय के समय विजय गंगा-जल लेकर राजकुमारी लावण्या के स्थान पर पहुँचा। विजय को देखते ही लावण्या मंत्र फूंकी रंगोली पारकर दूर दौड़ी, वहाँ पर महाकाय रूप धारण कर भयंकर रूप से गरजती हुई वह विजय की ओर आने लगी।

इस बीच विजय ने लोटे का गंगाजल रंगोली पर छिड़क दिया। दूसरे ही क्षण सारी रंगोली धूल की भाँति उड़कर हवा में विलीन हो गयी। उसी क्षण लावण्या अपने पूर्वरूप में आ गयी और विजय की ओर विस्मित दृष्टि से ताकने लगी।

लावण्या के समीप पहुँचकर विजय ने संक्षेप में सारी हक़ीकत सुनायी और उसको राजा के पास ले गया।

राजा गौरीनाथ ने अपनी कन्या का रक्षण करनेवाले विजय की खूब प्रशंसा की। ढिंढ़ोरे की शर्त के अनुसार उसने वैभवपूर्वक लावण्या का विवाह विजय के साथ संपन्न कराया।

शंका का समाधान

राजा नागदत्त धवलगिरी राज्य के शासक थे। वे बड़े धर्मात्मा थे। उनके राज्य में प्रजा सुखी और संपन्न थी। वे अन्याय बिलकुल सहन नहीं कर सकते थे। कर्मचारियों की जो भी शिकायतें आतीं, तुरन्त दूध और पानी का पानी कर देते। इस कारण प्रजा के मन में राजा नागदत्त के प्रति अतीव प्रेम और आदर था। एक बार उनके मन में एक शंका पैदा हुई। वह थी—कैसे पहचाना जाए कि मनुष्यों में कौन व्यक्ति उत्तम है ? उस का व्यवहार और चाल-चलन कैसा होगा ?

दूसरे दिन राजाने सभा बुलाई और मंत्री तथा सभासदों के सामने अपना संदेह पेश करते हुए उनसे उसका समाधान माँगा। हरेक ने अपने अपने ढंग से समाधान पेश किया, पर नागदत्त को किसी से संतोष नहीं हुआ। उन की शंका बराबर बनी रही। दूसरे देशों के नामी-गरामी पंडितों को भी नागदत्त ने बुलाया और अपनी शंका का समाधान पूछा। कोई उन का समाधान न कर सके।

राजा नागदत्त स्वयं इस प्रश्न को लेकर चिंतित रहे। पर उनका यह प्रयास भी असफल ही रहा।

कुछ दिन बाद नागदत्त अपने प्रधान मंत्री और कुछ राजभटों के साथ जंगल में शिकार खेलने गये। वहाँ जंगली सूअर और हिरनों के पीछे दौड़ते हुए सब अलग अलग दिशाओं में चले गये। कौन कहाँ गया इस बात का किसी को पता नहीं था।

दोपहर के समय सब लोगों को एक स्थान पर मिलकर राजधानी लौटना था। इस लिए शिकार खेलना बन्द कर सब जंगल में एक दूसरे को खोजने लगे। जाएँ तो कहाँ जाएँ ? अपनी अपनी सूझ-बूझ के अनुसार हरेक ने दूसरों को ढूँढ़ना शुरू किया।

विजय गुप्त

उस समय एक राजभट ने बरगद के पेड़ के नीचे एक मुनि को देखा। वे आँखें बंद करके ईश्वर का ध्यान कर रहे थे। घोड़े की टापों की आवाज़ सुन कर मुनि ने आँखें खोल दीं और अन्यत्र देखते हुए पूछा—"कौन है ?"

राजभट ने समझ लिया कि मुनि आँख के अंधे हैं। उसने डाँट-भरे स्वर में पूछा—"अबे अंधे सन्यासी, तुमने इधर से निकलते किसी व्यक्ति की आहट सुनी ?"

शांत स्वर में मुनि ने उत्तर दिया—"हे भट, कोई इधर से नहीं निकला। मैं सुबह से यहाँ बैठा ध्यान कर रहा हूँ। मैं ने किसी के आने-जाने की आवाज़ नहीं सुनी।"

फिर राजभट वहाँ से दूसरी ओर चला गया। सोचता रहा अब मंत्री और राजा को कैसे ढूँढ़ पाऊँगा। मृगया करते करते इस विशाल जंगल में हर कोई मनचाही दिशा में चला गया। अब तो धूप भी कितना सता रही है !

थोड़ी देर बाद मंत्री वहाँ पर आये। उन्होंने भाँप लिया कि मुनि अंधे हैं। उन्होंने मुनि से पूछा—"आप तो अंधे लगते हैं, इस कारण किसी प्राणी को देख नहीं सकते। फिर भी ध्वनि के आधार पर इतना बता सकते हैं कि थोड़ी देर पहले आप के निकट से मनुष्य गुज़रा या जानवर ? आप ने कैसी ध्वनि सुन ली ?"

"मंत्री महोदय, थोड़ी देर पहले यहाँ से एक राजभट गुज़रा है।" मुनि ने उत्तर दिया।

घोड़े पर बैठा मंत्री फिर वहाँ से चला गया।

कुछ समय बाद स्वयं नागदत्त वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने जाना कि मुनि अंधे हैं। तब राजा
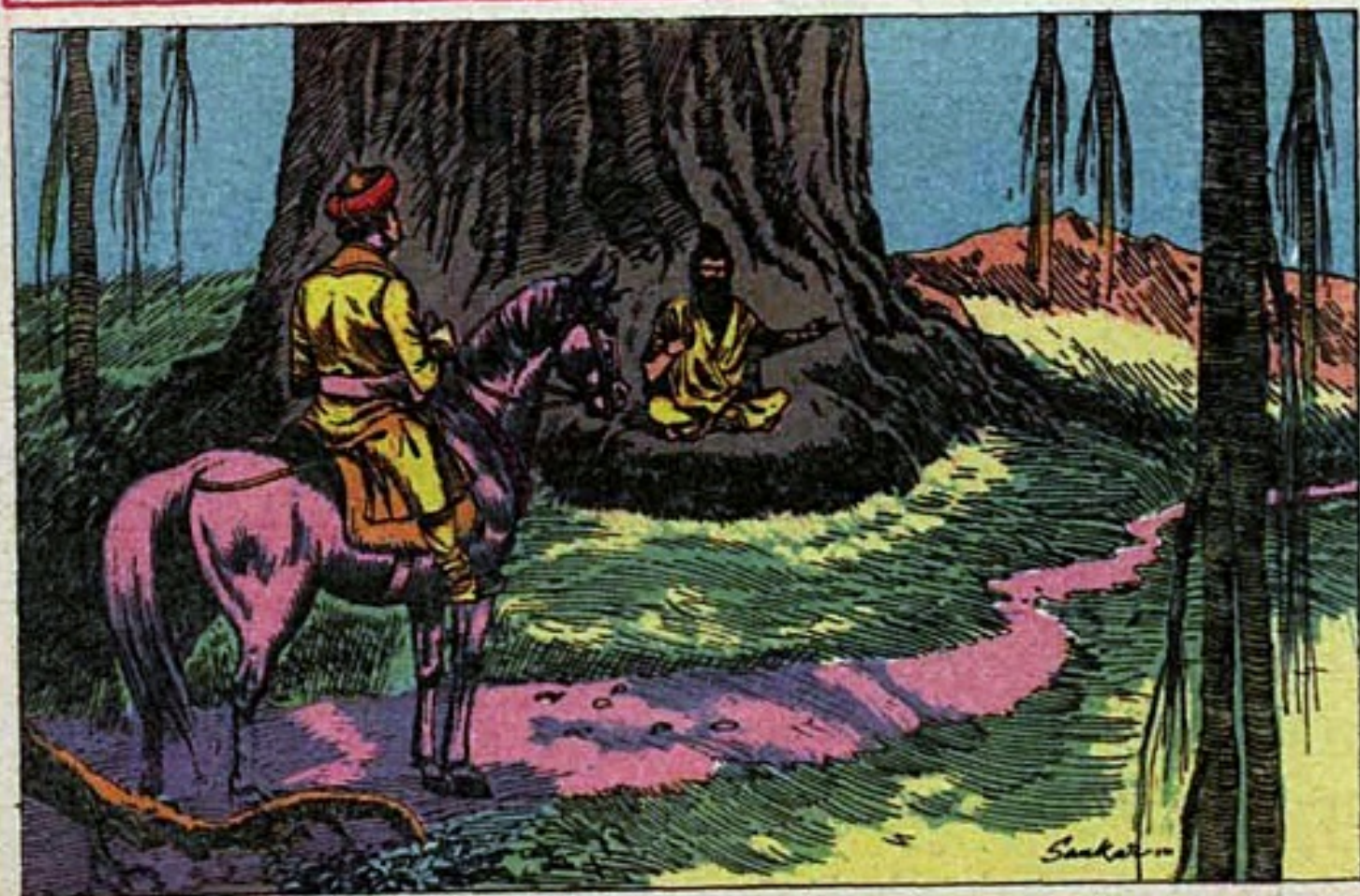
घोड़े से उतरकर मुनि के समीप पहुँचे, प्रणाम करके पूछा—"मुनिवर, मैं कुछ लोगों के साथ शिकार खेलने आया और उनसे अलग हो गया। उनमें से किसी के आनेकी ध्वनि आपने सुनी ?"

इस पर मुनि ने कहा—"महाराज, अभी थोड़ी देर पहले आप का एक भट और मंत्री यहाँ आकर चले गये हैं।"

राजा ने पूछा—"आप बता सकते हैं वे किस दिशा में चले गये हैं ?"

जिस दिशा में वे गये थे उसकी ओर हाथ उठाकर मुनि ने संकेत किया। इसके बाद राजा उसी दिशा में जाकर उनसे मिले। राजा को इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि मुनि ने राजभट को भट के रूप में, मंत्री को मंत्री के रूप में और राजा को राजा के रूप में कैसे पहचान लिया ?

अपनी शंका का समाधान करने के लिए राजा पुनः मुनि के पास आये और पूछा—मुनिवर, यह बताइये आप ने भट, मंत्री और राजा को उनके पदों के साथ कैसे पहचान लिया ?

इसपर मुस्कुराते हुए मुनि ने कहा—"महा राज, भट ने मुझे 'अबे अंधे संन्यासी' कहकर पुकारा। इस संबोधन के आधार पर मैं ने सोचा कि वह अवश्य राजभट होगा। अब बात रही मंत्री की। उन्होंने पहले मेरे अंधेपन की ओर संकेत किया। एक प्रकार आधिकारिक स्वर में प्रश्न किया। इस कारण मैं ने सोचा कि वे मंत्री हो सकते हैं। इसके बाद आप आये, घोड़े से उतर कर मेरे अंधेपन की ओर ध्यान न देकर वास्तविक समाचार बताकर ढंग से पूछा—"इधर किसी के आने की आहट आप ने सुन ली ?" इस आधार पर मैंने भाँप लिया कि आप ज़रूर राजा हैं। याने आप तीनों ने मुझ को जिस ढंग से संबोधन किया, उसके आधार पर मैं समझ सका कि कौन क्या है।"

मुनि की ये बातें सुनने पर राजा की उस शंका का भी समाधान हो गया, जो इधर कई दिन उसके मन में प्रशन-चिन्ह बन बैठी थी। उन्होंने समझ लिया कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के साथ जिस तरह का संबोधन या व्यवहार करता है, उसकी शैली के आधार पर जाना जा सकता है कि कौन व्यक्ति श्रेष्ठ है आरै कौन कनिष्ठ।

सोने की घाटी
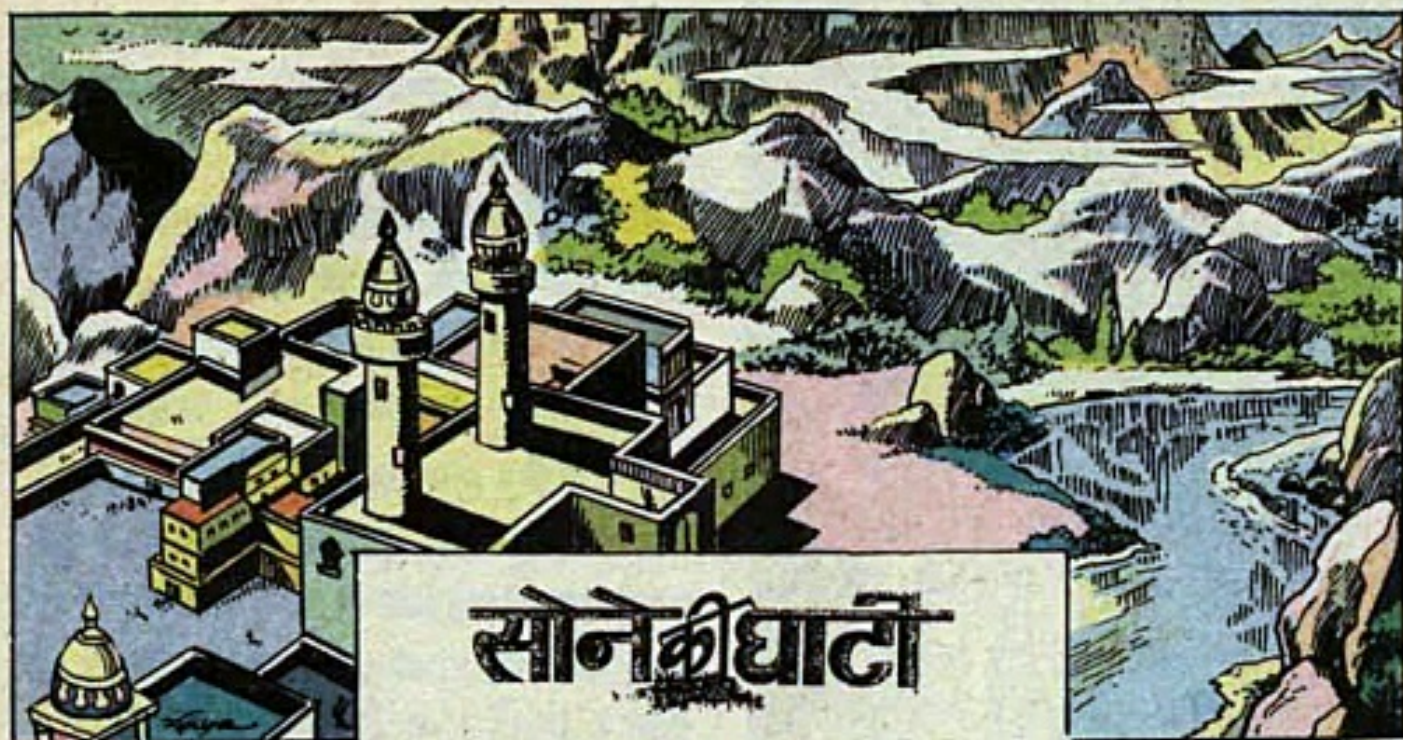
५

[युवराज को निगलने के लिए महामृग आगे बढ़ा। जयराज-विनोद ने उसका वध किया। पुजारी के आदेश पर राजभटों ने जयराज को बन्दी बनाकर कारागार की ओर भेज दिया। मध्यरात्रि के समय राजा शूरसेन अकेले आकर जयराज को राजमहल के ऊपरी तल में स्थित बुर्ज़ के भीतर ले गये और वहाँ से ज्ञानभूमि में होनेवाले विचित्र कार्यकलाप उसको दिखाने लगे।]

विलाप-सभा में आये हुए लोगों को संबोधित कर पुजारी कहने लगा, "हमारे महामृग का तो वध किया गया। अब उसकी जगह ग्रहण करने वाला एक दूसरा महामृग शीघ्र ही प्राप्त करेंगे।"

"हमारे पास जो था, वह तो नष्ट किया गया। अब आप कह रहे हैं, कि आप दूसरा महामृग प्राप्त करेंगे। मगर क्या बिना किसी महामृग के हम जी नहीं सकते? फिर से एक महामृग की क्या आवश्यकता है ?" एक नागरिक ने पूछा।

"तुम्हारे बिना भी कोई कार्य रुक नहीं सकता।" यों कहकर पुजारी ने तालियाँ बजायीं। तत्काल दो सैनिक वहाँ आ गये और उस नागरिक को वहाँ से खींचकर ले गये।

"नागरिकों, मैं तुमको एक और शुभसमाचार दे रहा हूँ। हमारे पवित्र महामृग का संहार करनेवाले जिस दुष्ट आदमी को हमने बन्दी बनाया है, उस दुष्ट का हम वध करेंगे और उस खुशी में उत्सव मनाएँगे।" पुजारी ने अपनी बात

मनोज दास

जायेंगे ।" यह कहकर पुजारी तीन क्षण स्तब्ध खड़ा रहा, और बाद में एकदम उच्च स्वर में विलाप करने लगा । इसी के साथ वहाँ उपस्थित क़रीब एक सौ कंठ कराहते, चीखते, रुदन करते उसका अनुसरण करने लगे । उन सबकी आँखों से अश्रुधाराएँ निकलकर उनके कपोलों पर सरकने लगीं । कुछ लोग सिर पीटते, रोते अपने वस्त्र फाडने लगे; तो कुछ अपनी छाती पीटते हुए अपने बाल नोचने लगे । एक मिनट के अन्दर ही सारा मण्डप रुदन की प्रतिध्वनियों से गुंजित हो उठा !

वह विषाददृश्य विनोद सहन नहीं कर पाया । इसे भांपकर राजाने उस दृश्य को रोककर कहा, " निद्रा के अभाव में होनेवाली रुग्णता को हमारे नागरिक इस प्रकार दूर कर रहे हैं ।"

आगे चलायी ।

जयराज ने ज़रा घबरायीं आँखों से राजा की ओर देखा । राजा शूरसेन ने उसको आश्वासित करते हुए कहा, "ऐसा कभी नहीं हो सकता । मैं उसे तुमको ज़रा सी भी क्षति पहुँचाने के लिये अनुमति नहीं दूँगा ।"

"मैं आप के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ महाराज । मगर बिना आप से सलाहमश्विरा किये पुजारी ऐसी घोषणा कैसे कर सकता है? यह क्या आपके अधिकार में दखल दिये जैसा नहीं है? क्या यह उसकी दुष्टता नहीं है? आप क्यों उस नररूपधारी राक्षस को आप पर अधिकार चलाने की अनुमति देते हैं?" यह कहकर जयराज ने पुनः अपना ध्यान पुजारी पर केंद्रित किया ।

"अब हम लोग अपनी दिनचर्या में लग

"महाराज. आपके ये सारे काम निरर्थक हैं । जनता को रुलाने के बदले उनको हँसने की कला क्यों नहीं सिखातें ? हँसाने लायक कोई मनोरंजन आप क्यों नहीं करवाते?" जयराज-विनोद ने पूछा

"बताओ, क्या करना होगा?" राजा ने जयराज की बात को न समझकर पूछा ।

"मैंने कहा न? उनको हँसाया जायँ ।" जयराज ने उत्तर दिया ।

"हँसाया जायँ? आखिर यह 'हँसना' किस चीज़ का नाम है?" शूरसेन ने अबोध भाव से पूछा ।

"हँसी, महाराज हँसी ।" विनोद ने पुनः

दुहराया ।

"वही तो मैं पूछ रहा हूँ, जयराज। ज़रा स्पष्ट रूप में कह दो—हँसी के माने क्या है। वह क्या चीज़ होती है!" राजा ने फिर पूछा ।

"हाय भगवान! क्या सचमुच आप हँसना नहीं जानते?" जयराज ने विस्मय में आकर पूछा।

फिर यह प्रश्न सुनकर राजा सकते में आ गये। वास्तव में ज्ञानभूमि के निवासी हँसी का अर्थ नहीं जानते थे। वे कभी हँसे ही नहीं थे।

जयराज ने राजा को प्रत्यक्ष हँसकर दिखाना चाहा कि हँसी क्या होती है—दिखाएँ। मगर हाय! वह भी हँस नहीं पाया ।

"महाराज, आप तथा आपकी इस ज्ञानभूमि के नागरिकोंने जो भी प्रगति साध ली हो, मगर वह सब बेकार है,निरर्थक है। काश, मैंने राजा होकर अनेक अद्भुत कार्य—नक्षत्रों को ध्वस्त करने की शक्ति के साथसाथ और अपार अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त करने के बदले उन्हें स्वेच्छासे हँसने की शक्ति प्राप्त करायी होती!" जयराज ने कहा।

जयराज बिलकुल दिल से बातें कर रहा था। उन बातों में जो सचाई, उसके मन की सफाई दिखाई दे रही थी, उसको भांपकर राजा शूरसेन बहुत ही प्रभावित हुए; खुश हुए। पर थोड़ी देर के लिये वे मौन ही रह गये ।

अकस्मात एक गोपुर पर पीले रंग का दीप जल उठा। साथ ही घंटे की आवाज़ सुनाई दी।

"ओह, इसका तात्पर्य है कि कोई नयी खोज सफल हो गयी है । संभवतः मनोदर्पण ही

सफलता से बनाया गया होगा।" राजा ने जयराज से कहा ।

इसके बाद राजा शूरसेन और जयराज-विनोद बुर्ज़ से बाहर निकल आये। उनके बाहर निकलते ही द्वार अपने आप अदृश्य हो गया ।

उसी समय वहाँ की सीढ़ियों पर किसी के आने की आहट सुनायी दी। राजा ने संकेत करके जयराज को कहा कि, वह ओट में चला जाय।

"महाराज, मनोदर्पण तैयार हो गया है।" यह ख़बर देते हुए दो पंडित वहाँ आ पहुँचे। वस्त्र से ढँके एक आइने को राजा के हाथ सौंपते हुए वे बोले, "महाराज, आप किसी भी व्यक्ति का स्मरण करके उसका नामोच्चारण करते हुए इस दर्पण को तीन बार हाथ से पीछे डालिये और तब दर्पण में झाँकिये, तो वह व्यक्ति आपके बारे में क्या सोच

रहा है—यह बात आपको अपने आप स्पष्ट मालूम हो जाएगी ।"

"मुझे बड़ी खुशी है कि आप लोगों के प्रयत्न सफल रहे। सबसे पहले हम अपने हितैषी पुजारी के मन को इस दर्पण में आजमाएँगे ।" यह कहकर राजा शूरसेन ने उस मनोदर्पण पर ढँके वस्त्र को हटाना चाहा ।—इतने में—

"रुक जाइये, रुक जाइये ।" चिल्लाता हुआ पुजारी वहाँ हा धमका और दृढ स्वर में बोला, "इस मनोदर्पण का उपयोग सर्वप्रथम मैं करूँगा। और यह वस्तु मेरे पुजारी होने के नाते, हमेशा मेरे पास रहेगी ।"

राजा इसका उत्तर नहीं दे पाये। वे मौन रहे।

"महाराज, आप यह बात नहीं भूलियेगा कि आप राजा हैं। एक राजा के रूप में इस मनोदर्पण का उपयोग सबसे पहले करने का अधिकार केवल आप ही का है। आप इसी क्षण पता कर सकते हैं।" अपनी छिपी जगह से आगे बढ़ते हुए जयराज उन लोगों के सामने आकर बोल उठा।

"ऐसा कभी नहीं हो सकता, कभी नहीं ।" चिल्लाते हुए पुजारी राजा के हाथ से दर्पण खींचने को हुआ । मगर एक ही छलांग में कूदकर जयराज ने उन दोनों के बीच खड़े होते हुए पुजारी को रोक लिया ।

इस बीच शूरसेन ने मनोदर्पण का वस्त्र हटाया। पुजारी का नामोच्चारण करते हुए तीन बार दर्पण को पोछकर उसने दर्पण में झाँककर देखा। दृश्य देखकर राजा पहले तो चौंक उठे, और तब गुस्से से बौखला उठे । दर्पण दूर फेंककर उन्होंने झट तलवार म्यानमें से निकाली और एक ही भरपूर वार से उन्होंने पुजारी का सिर धड़से अलग कर दिया ।

"महाराज, आपने यह क्या किया?" चकित होकर जयराज ने राजासे पूछा ।

"हाँ। उस क्षणिक आवेश में मैंने यह कैसे किया, खुद मेरी ही समझ में नहीं आ रहा है।" यह कहकर ज़रा रुककर महाराज बोलने लगे—"मैंने उस दर्पण में दृष्टिपात किया तो देखता क्या हूँ !—यह पुजारी तलवार खींचकर दांत पीसते हुए मेरी तरफ़ बढ़ा चला आ रहा है। मैं तो यह भी भूल गया कि वह दृश्य केवल आयने में दिखाई देनेवाला बिम्ब मात्र है! बल्कि उस दृश्य को यथार्थ मानकर अपनी आत्मरक्षा के

राजा ने पूछा ।

"महाराज, इसमें संदेह करने की बात क्या है? चाहे तो और एक बार मनोदर्पण की परीक्षा करके देखिये न ।" मनोदर्पण का निर्माण करनेवाले पंडितों ने एक स्वर में उत्तर दिया ।

"यह बड़ी अच्छी सलाह है ।" यों कहकर राजा ने जयराज की ओर देखकर फिर कहा, "जयराज, पुजारी अक्सर तुम्हारे बारे में मुझसे कहता रहता था कि तुम मानव रूपधारी राक्षस हो और तुम हमें हानि पहुँचाने के विचार से ही यहाँ आये हुए हो । यह बात कहाँ तक सत्य है उसे मै अभी इस मनोदर्पण द्वारा जाँच कर समझ लूँगा ।" यह कहकर पलभर के लिये राजा ने अपनी आँखें मूँद लीं; और फिर जयराज के नाम का स्मरण करके राजाने उसके नाम का उच्चारण करते हुए दर्पण तीन बार पोंछ दिया । वह दर्पण में देखने लगे ।

राजा शूरसेन पहले विस्मय में आ गये, फिर अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए बोले, "जयराज, तुम कोई एक महान् कार्य साधने के लिये हमारी ज्ञानभूमि से गुज़र कर जानेवाले हो । अपनी यात्रा सुगम बनाने के लिये तुम्हें हमारी सहायता की आवश्यकता है । बस, इसके अलावा तुम्हारे मनमें हमारे बारे में कोई और भाव नहीं हैं । तुम्हारे मनमें हमारे प्रति शत्रुता या कोई और दुष्ट भाव हरगिज़ नहीं है । उल्टे हमारे शुभ की ही कामना अपने मन में रखते हो ।"

राजा के मुँह से ये शब्द सुनकर जयराज की

हेतु मैंने उसका संहार भी कर डाला ।" राजाने खून से सने पुजारी के शरीर की ओर देखते हुए व्यथित होकर ये शब्द कहे ।

"महाराज, इसका अर्थ है कि वास्तव में ही पुजारी आपका वध करने का संकल्प कर चुका था । तभी तो आपको वैसा दृश्य आयने में दिखाई दिया न ?" पंडितों ने आश्चर्य में आकर राजा से पूछा । इस हकीकत से आश्चर्य से सन्न हुए राजा के हाथ से तलवार फिसलकर फर्शपर गिर पड़ी ।

"महाराज, एक शासक को कभी भी बिना तलवार के नहीं रहना चाहिए ।" कहने हुए जयराज ने तलवार उठायी और राजा की कमर में लटके म्यान में सुरक्षित रख दी ।

"मैंने जिस प्रकार मनोदर्पण में देखा, उस प्रकार क्या वास्तव में ही पुजारी मेरा शत्रु था ?"

आँखों में आनंदाश्रु झलक आये। उसने कहा, "महाराज, मैं जो बातें आपसे करना चाहता था, वे बातें स्वयं आपके ही मुँहसे निकल रहीं हैं। मुझे एक वर प्राप्त करने के लिये इस ज्ञानभूमि को पार कर जाना होगा। इस कार्य में मैं आपकी सहायता चाहता हूँ।"

थोड़ी देर मौन रहकर फिर राजा ने वहाँ उपस्थित पंडितों को वहाँ से चले जाने का संकेत किया। उन के चले जाने के बाद राजा जयराज से कहने लगे, "इस ज्ञानभूमि के उस पार स्थित प्रदेश में से कोई भी व्यक्ति कभी नहीं गया है। फिर भी हमें उस प्रदेश के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी ज़रूर है। उस प्रदेश व हमारी ज्ञानभूमि के बीच के प्रदेश में पर्वतश्रेणियाँ हैं। ये पर्वतश्रेणियाँ वहाँ के प्रदेश में विषैली वायु फैलाती रहती हैं। उन विषैली वायुओं से बचकर कोई भी प्राणी उस पार नहीं जा सकता।"

"महाराज, उन विषैली वायुओं का सामना कर उस पार पहुँचने में मेरी सहायता करने की क्षमता रखनेवाले आप ही अकेले व्यक्ति हैं।" जयराज ने कहा।

"बताओ, मैं किस प्रकार तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ ?" राजा ने पूछा।

"महाराज, आप मुझे केवल उस रहस्य का उपदेश दीजिये, कि जिससे मैं एक स्थान पर ध्वनि-तरंगों के रूप में परिवर्तित होकर अदृश्य हो जाऊँ; और दूसरे स्थान पर मूल रूप में प्रत्यक्ष हो जाऊँ।" विनोद ने राजा से प्रार्थना की।

राजा शूरसेन पुनः विचार में डूब गये।

जयराज ने फिर कहा, "महाराज, मैं अगर इस प्रयास में सफल हो सका तो आप सब के लिये मैं ऐसा वरदान ले आऊँगा, कि जिससे ज्ञानभूमि के आप सब लोग मुक्तकंठ से हँस सकें।"

"हँसनेवाला वरदान। यह क्या है—मैं स्पष्ट रूप में समझ नहीं पा रहा हूँ। फिर भी मुझे यूँ प्रतीत होता है, कि वह एक महान् वस्तु है। लेकिन, तुम जिस रहस्य को जानना चाहते हो, वह अत्यंत मूल्यवान रहस्य है। उस परम रहस्य को जाननेवाले बस दो ही व्यक्ति इस ज्ञानभूमि में हैं—एक मैं स्वयं और दूसरा पुजारी—मगर वह तो अब मर चुका—मैं अकेला ही वह रहस्य जानता हूँ।" राजा ने जानकारी दी।

"महाराज, उस रहस्य का पता, उसकी खोज

करनेवाले पंडितों को भी तो होगा न?" जयराज ने मार्के की बात पूछी ।

"हाँ, यह बात सही है । मगर पुजारी ने इसके बारे में भी ऐसा बंदोबस्त किया कि उस रहस्य का उपयोग करने का मौका ही उन पंडितों को न मिले ।" राजा ने कहा ।

"मैं समझ गया । इसका मतलब है कि उस रहस्य का उद्‌घाटन होते ही पुजारी ने उन पंडितों का वध कर डाला । सही है न मेरी बात ?"

स्वीकृतिसूचक सिर हिलाकर जयराज के इस प्रश्न का जवाब शूरसेन ने दे दिया और कहा, "अच्छी बात है । मैं तुम्हारी प्रार्थना के संबंध में तुम्हें बाद में विस्तार से समझा दूँगा ।"

"ठीक है ।" जयराज ने कहा ।

राजा को निर्णय करने में एक सप्ताह का समय लगा । इस बीच जयराज और युवराज में और भी अच्छी मित्रता स्थापित हुई । जयराज ने युवराज से मिलकर व्यथित स्वर में कहा, "आप कितने सुंदर युवराज हैं, परंतु यह क्या दुभाग्य की बात है कि आप हँस ही नहीं सकते! हँसमुख बनने से आप और ही सुंदर लग सकते थे । खुद हँसकर इस बात का महत्व तुमको बताना भी चाहूँ, तो मैं भी इस ज्ञानभूमि में हँस नहीं पा रहा हूँ ।"

यह व्यथा भापकर राजा जयराज तथा युवराज को भी साथ लेकर ज्ञानभूमि की सीमा पर पहुँचे और वहाँ राजा ने जयराज को अदृश्य होने का रहस्य समझा दिया । फिर बोले, "देखो जयराज, अदृश्य होने के पश्चात् ज़्यादा देर उसी स्थिति में रहना भी ख़तरे से खाली नहीं है । विषैली वायु फैलानेवाली पवर्तश्रेणियों को पार करते ही तुरंत तुम्हें फिर मानवाकृति में प्रत्यक्ष होना पड़ेगा यह महत्व की बात याद रखो, भूलना नहीं । अदृश्य रूप में अधिक समय तक रहना हितकर नहीं है ।" राजा ने जयराज को चेतावनी दी ।

जयराज के अदृश्य होने के पूर्व राजा और युवराज ने उसे बिदा किया । राजा के उपदेश के अनुसार उस रहस्य के सूत्र का उपयोग कर के जयराज कुछ ही क्षणों में शक्ति-तरंगों के रूप में परिवर्तित होकर अदृश्य हो गया ।(क्रमशः)

विनील की कहानी

दृढ़व्रती विक्रमार्क फिर वृक्ष के पास लौट आये, लाश उतारकर कंधेपर डाल ली; और सदा की भाँति मौन होकर स्मशान की ओर निकल पड़े। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन् कर्तव्यपालन के प्रति आप का दृढ़विशवास प्रशंसनीय है। फिर भी मेरे मन को यह शंका कुरेद रही.है कि आपका इच्छित कार्य सफल होने पर परिस्थितियाँ कैसा रूप धारण करनेवाली हैं। क्योंकि कभी कभार कार्य की असफलताही नहीं, बल्कि सफलता भी बड़े बड़े मेधावियों को उलझन में डाल देती है। मेरे इस कथन की पुष्टि के लिये मैं आप को एक महान् पंडित व कवि विनील की कहानी सुनाता हूँ। सावधानी से सुन लीजिए आप का श्रमपरिहार भी होगा।"

बेताल कहानी सुनाने लगाः—

प्राचीन काल में ज्ञानसागर नाम का एक पंडित रहा करता था। उसके ललिता नाम की

बेताल कथा

इकलौती बेटी थी। एक बार विनील नाम का एक युवक ज्ञानसागर के पास विद्यार्जन करने आया। ज्ञानसागर ने प्रथमतः उसकी परीक्षा ली और उसकी मेधापर प्रसन्न हो उसे अपना शिष्य बनाया। वैसे सहज ही विनील मेधावी था ही। अब ज्ञानसागर का शिष्यत्व पाकर वह अपनी विद्या में तो कुशल बना ही और वह अल्पकाल में ही बाकी सभी विद्याओं में भी महान् प्रतिभाशाली बना।

विद्याभ्यास समाप्त करनेपर विनील ने चाहा कि कहीं राजाश्रय प्राप्त करूँ। मगर इससे पहले ज्ञानसागर को गुरुदक्षिणा देकर अपने गुरु से अनुमति लेना उसने ज़रूरी समझा। गुरु के पास जाकर उसने अपना यह विचार प्रकट किया।

विनील की बातें सुनकर ज्ञानसागर पलभर मौन ही रहे; मगर बाद में उन्होंने विनील से पूछा, "विनील, मैं जो माँगूँ, उसे तुम गुरुदक्षिणा में दे सकोगे ?"

"गुरुदेव, यदि मेरी शक्ति के बाहर की बात न हो, तो मैं कोई भी चीज़ गुरुदक्षिणा के रूप में देनेको तैयार हूँ।" विनील ने विनयपूर्वक उत्तर दिया।

यह सुनकर संतुष्ट होकर ज्ञानसागर बोल उठा, "विनील, तुम विद्या में बृहस्पति बन गये हो जानते हो, इससे मुझे कैसी प्रसन्नता हुई है ? यही मेरे लिये अभिमान की बात है। वैसे मेरे मन में और कोई इच्छा नहीं है— तुम मेरी पुत्री ललिता के साथ विवाह करोगे तो मैं अत्यन्त संतुष्ट हो जाऊँगा— समझें, मेरे लिये यही गुरुदक्षिणा काफ़ी है !"

ज्ञानसागर की इच्छा जानकर विनील व्याकुल हो उठा। उसने कल्पना तक नहीं की थी कि गुरुजी इसके सामने ऐसा प्रस्ताव रखेंगे। वह तड़प कर बोला, "गुरुदेव, आपने मेरी यह कैसी अग्नि परीक्षा लेनी चाही ! मैं आपको पितृसमान तथा ललिता को सहोदरी समान मानता आया हूँ। ऐसी हालत में उसके साथ विवाह का यह प्रस्ताव क्या न्यायसंगत है ?"

विनील की बात सुनकर ज्ञानसागर खिन्न हुआ और उसने कहा, "बेटे, ऐसा कोई नियम नहीं है कि गुरुपुत्री के साथ विवाह नहीं करना चाहिए।" यह कहकर अनेक उदाहरण देकर ज्ञानसागरने

विनील को समझाना चाहा ।

इसके बावजूद भी विनील ललिता के साथ विवाह करने को तैयार न हुआ । उसने अनेक प्रकार से अपने गुरु को समझाने का प्रयत्न किया । विनय अनुनय किया । इसपर ज्ञानसागर क्रोधावेश में आ गया ।

उसने कमण्डलु का जल हाथ में लेकर शाप वचन सुनाया, ''मैं आज तक समझ नहीं पाया कि तुम्हारे भीतर इतना अहंकार घर कर गया है । तुम गुरुदक्षिणा न चुका पाने की हालत में एकदम पाप के भागी हो गये हो, परिणामतः तुम अपनी सारी विद्याएँ भूल जाओ और आज से केवल एक साधारण व्यक्ति का जीवन व्यतीत करो ।''

गुरुजी की शापवाणी सुनकर विनील एकदम शोक में डूब गया । आँखों में आँसू भरकर उसने ज्ञानसागर को प्रणाम किया और कहा, ''गुरु पुत्री के साथ किसी भी क़ीमत पर मैं विवाह नहीं कर सकता । आपने मुझे शाप के द्वारा जो दण्ड दिया है, उसे मैं प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता हूँ ।'' यह कहकर तेज़गति से विनील वहाँ से चल दिया ।

इसके बाद विनील कुछ समय तक पागल की भाँती सारे देशमें भटकता रहा । उसे न अपनी तबीयत का ख़याल रहा, न भूखप्यास का ! आखिर एक दिन बहुत ही कमज़ोरी की हालत में किसी प्रकार से वह श्रीरंगपट्टण पहुँचा और श्रीरंगनाथ के मन्दिर के सामने बेहोश हो गिर पड़ा

उसी समय श्रीरंगनाथ के दर्शनार्थ कृष्णाचार्य नाम का एक पंडित वहाँ पहुँचा । उसने बेहोश विनील को देख अपने शिष्यों की मदद से उसे अपने घर पहुँचा दिया और उसका उपचार

करवाया ।

थोड़ी देर बाद विनील जब होश में आया तब उसे कुछ श्लोक सुनाई दिये। मकान के आँगन में कृष्णाचार्य के कुछ शिष्य श्रीरंगनाथ के प्रति स्तोत्रगीत गा रहे थे। भक्तिरसपूर्ण उस माहौल के परिणामस्वरूप विनील भी आशुरूप में श्रीरंगनाथ की प्रस्तुति में एक श्लोक गाता हुआ उठ खड़ा हुआ ।

उसी आवेश में विनील एक घंटे तक आशुरूप में श्लोक सुनाता रहा। और बाद में फिर वह बेहोश हो कृष्णाचार्य के चरणों में गिर पड़ा ।

विनील की काव्यप्रतिभा, पदलालित्य तथा शब्दसौष्ठव पर कृष्णाचार्य और उनके शिष्य मुग्ध हो आश्चर्य में आ गये। सबने बड़ी प्रसन्नता पूर्वक उसकी सराहना की ।

कृष्णाचार्य ने विनील को अपने हाथों का सहारा देकर उठाया। विनील ने उसको प्रणाम करके पूछा,"महानुभाव, आप कौन हैं ? मैं यहाँ कैसे आया ?"

सारा वृत्तान्त उसे सुनाकर कृष्णाचार्य ने उससे पूछा,"बेटे, तुम कौन हो ? तुम ने श्रीरंगनाथ के प्रति जो कविता आशुरूप में सुनाई, उसे सुनकर मुझे तो लगा कि मेरा जन्म धन्य हो गया। सरस्वती के ऐसे वरदपुत्र तुम, इस प्रकार हीन-दीन अवस्था में हो, इसका कारण क्या मैं जान सकता हूँ ?"

"स्वामिन्, बताइये, क्या यह बात सच है, कि मैंने श्रीरंगनाथ की स्तुती पर आशु-कविता सुनाई?" विनील को खुद पर विश्वास नहीं हो रहा था ।

मंदहास करके कृष्णाचार्य कहने लगा,"तुमने शुरू में जो श्लोक सुनाये, उन्हें सुनकर मैं चकित रह गया था। इसलिये उसके बाद तुम्हारे मुँह से जो एक-एक शब्द निकला उस को मैंने अपने शिष्यों द्वारा उसी समय लिपिबद्ध कराया है, देखो तो !" यह कहकर उसने अपने शिष्यों के हाथ से ताडपत्र लेकर विनील के हाथ में धर दिये ।

आशुरूप में विनील ने जो श्लोक रचे थे उन्हें पढकर उसकी आँखों से एकदम आनन्दाश्रु झरने लगे। अब वह समझ चुका कि, उसके गुरु ज्ञानसागर का दिया शाप कारगर सिद्ध नहीं हुआ है ।

"सुनो, तुमने अब तक अपना परिचय नहीं दिया ?" कृष्णाचार्य ने पूछा ।

विनील ने सारी हक़ीकत कृष्णाचार्य को सुनायी । इसपर कृष्णाचार्य ने कहा, "अच्छी बात है, वत्स, तुम उन सारी बातों को भूल जाओ । थोड़े दिन मेरे घर में ही रहो । चलो, स्नान करके भोजन कर लो ।"

ये शब्द कहते हुए कृष्णाचार्य के मुखमंडल पर पहले का प्रशांत भाव नहीं रहा; इस बात को विनील ने भांप लिया । पर उसने इसपर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया ।

भोजनोपरांत विनील ने कृष्णाचार्य के पास लौटकर विनीत स्वर में पूछा, "स्वामी, इस नगर के राजा कौन हैं ? क्या वे कवियों के आश्रयदाता हैं ? क्या उसके दरबार में प्रतिभाशाली पंडित भी हैं ?" इसके साथ वह और भी वह और भी कुछ प्रश्न पूछने को हुआ ।

मगर कृष्णाचार्य ने उस को बीच में रोकते हुए कहा, "वक्त आने पर मैं तुम्हें सारी बातें बता दूँगा; अब तुम थक गये हो, जाकर विश्राम कर लो ।"

दूसरे दिन से विनील किसी न किसी विषय पर आशु रूप में कविता रचकर सुनाने लगा । परन्तु, आश्चर्य की बात यह थी कि, उसकी कविता का माधुर्य और उसका पांडित्य बराबर घटता ही गया । आख़िर उस की कविता में रसपुष्टि तो दूर ही रही, मगर अब शब्दार्थ भी विकृत रूप में ध्वनित होने लगे । अब उस की कविता सुननेवाले कृष्णाचार्य के शिष्यों के चेहरों पर उसके प्रति तिरस्कार की भावना दिखाई देने लगी । विनील ने यह परिर्वतन भी कुछ हद तक

भाँप लिया। मगर उसके कारण की जड़ में जाने का उसने कोई प्रयत्न नहीं किया।

इस हालत में एक बार कृष्णाचार्य के दो शिष्यों के बीच का यह वार्तालाप विनील को सुनाई दिया।

एक शिष्य कह रहा था, "भाई देखते हो न; इधर विनील की कविता में अहं कैसे ध्वनित हो रहा है ?"

हाँ भाई, तुम्हारा कथन सत्य है ! न मालूम पहले दिन श्रीरंगनाथस्वामी की उस पर कैसे कृपा हुई ! हमने उसके मुँह से अमृतवृष्टि करनेवाली कविता सुनी। अब देखो कैसे शुष्क शब्द भरे श्लोक सुना रहा है !" दूसरे ने 'हाँ में हाँ' मिलाते हुए कहा।

"जानते हो परसों गुरुदेव ने इसके बारे में क्या कहा ?—कहा कि, यह विनील अपने आप को बहुत बड़ा विद्वान मानता है। मगर बेटे, उसके अन्दर अभी तक पूर्ण रूप से आत्मज्ञान जागृत नहीं हुआ है।" पहलेवाला बोल उठा।

अब यह वार्तालाप सुनते ही विनील के मन में आंतरिक विचार-मंथन शुरू हुआ।

अंत में वह कृष्णाचार्य के पास पहुँचा और उन के चरणों में प्रणाम करके बोलने लगा, "गुरुदेव मैं अभी तक धर्म के सूक्ष्म रूप को समझ नहीं पाया। आप की कृपा से मेरी आँखें खुल गयी हैं। मुझे आप आशीर्वाद दीजिये। मैं फिर एक बार अपने गुरु के दर्शन कर लौट आऊँगा।"

यह कहानी सुनाकर बेताल ने कहा, "राजा, हो सकता है कि, इतनी मधुर कविता आशुरूप में सुना पाने के कारण विनील के मन में अहंकार जागृत हुआ हो। पर उस की काव्यप्रतिभा लुप्त होने का क्या कारण हो सकता है ? ज्ञानसागर का विनील को दिया शाप कारगर क्यों नहीं हुआ ? विनील ने पुनः ज्ञानसागर के पास जाने की इच्छा क्यों दर्शायी ? इन प्रश्नों का सही उत्तर जानते हुए भी तुम न बोलोगे तो इसी समय तुम्हारे सिर फटकर उसके सैकडों टुकडे-टुकडे हो जाएंगे।"

विक्रमार्क ने इसपर उत्तर दिया, "विनील अपने आप को एक महान् कवि मानकर अहंकारी बन गया। उसके भीतर इसलिये अहंकार पैदा हुआ कि, उसकी महानता के सामने उसके गुरु

का दिया शाप भी असफल रहा ! लेकिन इस संदर्भ में इसके पीछे का सत्य वह समझ नहीं पाया। शाप सिद्ध न होने के कारण 'विनील की महानता' नहीं था; 'ज्ञानसागर की अपनी दुर्बलता' था। ज्ञानसागर ने साधारण ढंग से अपनी पुत्री से विवाह का प्रस्ताव न रखकर गुरुदक्षिणा के रूप में रखा। इस कामना के पीछे अनिवार्यता तथा आदेश जैसे लक्षण हैं। विनील का नकारात्मक उत्तर सुनने पर भी ज्ञानसागर को चाहिए था कि एक गुरु तथा पिता के समान वे विनील को आर्शीवाद ही दे दें; मगर ऐसा न करके उन्होंने क्रोधाधीन होकर विनील को शाप दिया और खुद दोषपात्र बने। और इसी कारण से उनका शापवाचन सफल नहीं हुआ।मगर विनील ने यह सत्य समझने की कोशिश नहीं की और साथ ही वह अपने को बड़ा धमार्त्मा मान बैठा। अपने धमार्त्मा होने के कारण ही शाप कारगर नहीं हुआ— यही उसने मान लिया। इससे उसके मन में गुरु के प्रति आदर के बदले घृणा और खुद से प्रति अहंकार पैदा हुआ। इसीसे वह मधुर काव्यरचना करने की शक्ति से भी वंचित को गया। बात यह है कि विद्वान नम्र होता है। ज्योंज्यों उसके ज्ञन का क्षेत्र विपुल होता जाता है, त्योंत्यों उसका हृदय विशाल होता है। उसके भीतर दया, सहानुभूति, उदारता, क्षमा, परोपकार आदि महान गुण जन्म लेते हैं। साथ ही उसमें स्वार्थ की भावना लुप्त होती है। लेकिन ज्ञानसागर के भीतर इन गुणों का सर्वथा अभाव था। वह विनील की मेधा पर मुग्ध होकर उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कराना चाहता था।

उसने विनील को शाप दिया। विनील भी अपने अहंकार के कारण अपनी प्रतिभा से वंचित रह गया।

अंत में उसने सत्य को पहचाना और परिताप होने के कारण ज्ञानसागर से क्षमा माँगकर उसने अपने अंतर के अहंकार, दर्प आदि गुणों से मुक्त होना चाहा।

इस प्रकार राजा का मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य को फिर जाकर पेड़पर लटकने लगा।

(कल्पित)

असली ग़लती

एक गाँव का अधिकारी घूसखोर था। घूस के रूप में जो अधिक धन देता, अधिकारी उसके अनुकूल फ़ैसला सुना देता। एक तरफ़ वह इस प्रकार अन्यायपूर्वक धन कमाता था, तो दूसरी ओर उसका इकलौता बेटा तरह तरह की बुरी लतों का शिकार बन रहा था।

एक दिन गाँव का अधिकारी सो रहा था। उसका पुत्र अपने पिता के कुर्ते की ज़ेब से पैसा चुरा रहा था और इस अवस्था में पकड़ा गया। अधिकारी को इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि अपने घर में अपनी ज़ेब से लड़का पैसा चुरा ले।

अधिकारी ने कड़ी डाँट भरते हुए बेटे से कहा—"जानते हो एक अधिकारी के नाते इस अपराध के लिए मैं तुम्हें कैसा दण्ड दूँगा ?"

"पिताजी, मुझे मालूम है कि किन किन अपराधों से मुक्त होनेके लिए आप जैसे गाँव के अधिकारी को कितनी रिश्वत देनी होती है।" ऐसा कहते हुए पुत्र ने पिता के हाथ में दो रुपयों का नोट थमा दिया और वह चला गया।

गाँव का अधिकारी समझ गया कि वास्तव में ग़लती तो उसीकी है। वह स्वयं अनैतिक व्यवहार न करता तो उसका पुत्र ऐसा कभी न बनता ! बस, उस दिन से अधिकारी ने घूस स्वीकार करना छोड़ दिया।

काव्य कथाएँ:

शकुन्तला—२

कण्व मुनि धर्मात्मा राजा दुष्यन्त के प्रति आदर का भाव रखते थे। इस लिए वास्तविक समाचार जानकर उनको प्रसन्नता हुई। उन्होंने शकुन्तला को आशीर्वाद दिये और उसको उपदेश दिया कि राजा दुष्यन्त के अन्तःपुर में उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए।

एक दिन की बात है। कण्वमुनि बाहर गये हुए थे। शकुन्तला एकान्त में बैठी दुष्यन्त की याद में खोई हुई थी। उस समय दुर्वासा मुनि वहाँ पर आ पहुँचे और कण्व के बारे में पूछा। उदास होनेके कारण उसने दुर्वासा के आने पर ध्यान नहीं दिया। शीघ्रकोपी दुर्वासा ने गुस्से में आकर शकुन्तला को शाप दिया—"जिसकी याद में अपने को खोकर तुमने मेरी उपेक्षा की है, वह तुमको भूल जाएगा।"

मुनि का शाप शकुन्तला के कान पर पड़ा। लेकिन आश्रमवासिनी दूसरी मुनि-कन्याएँ शाप को सुनकर घबरा गईं और उन्होंने दुर्वासा से प्रार्थना की कि वे शकुन्तला के अपराध को क्षमा करें। इस पर दुर्वासा का मन पिघल गया और जाते हुए उन्होंने बताया—शाप का प्रभाव तात्कालिक रहेगा।

इस तरह कुछ दिन बीतने पर कण्व मुनि ने शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजने का प्रबंध किया। सारी सखियों से बिदा लेकर और अपने पोषित पिता व अन्य बुज़ुर्गों को प्रणाम करके शकुन्तला हस्तिनापुर चल पड़ी। कण्व मुनि का एक शिष्य शकुन्तला की रक्षा के लिए साथ में चल पड़ा।

बड़े प्यार दुलार से अपना पालन-पोषन करनेवाले कणव मुनि को छोड़ने का एक तरफ़ शकुन्तला को दुख था तो दूसरी तरफ़ प्रिय पति के घर जानेकी खुशी। उसकी नौका-यात्रा सुखपूर्वक संपन्न हुई।

हस्तिनापुर में दुष्यन्त की राज्य-सभा में शकुन्तला ने बड़ी खुशी से प्रवेश किया। राजा ने शकुन्तला को देखा अवश्य, पर उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। शकुन्तला को बड़ा आश्चर्य हुआ। साथ में आए मुनि-कुमार ने दुष्यन्त से निवेदन किया—"महाराज, यह युवती कण्व मुनि की पोषित पुत्री है। इसका नाम है शकुन्तला।"

"ओह, यह बात है । हम तुम्हारी क्या सहायता कर सकते हैं ? कुछ प्रार्थना करने आई हो ?" दुष्यन्त ने पूछा । यह सुनकर शकुन्तला एक दम चकित रह गई । मुनि-कुमार ने राजा को पुनः स्मरण दिलाते पूछा—"महाराज, क्या आप शकुन्तला को भूल गये हैं ? कण्वाश्रम में आपने इस के साथ विवाह कर लिया है न ? "

"भगवन्, ये लोग मुझ पर दोषारोपण करने आए लगते हैं ।" इस विचार से व्याकुल हो दुष्यन्त बोले—"मेरे सिर पर ऐसा दोष मढ़ने की हिम्मत कैसे कर रहे को तुम ? चुपचाप चल दो, वरना मेरे कठोर दण्ड का शिकार बनना पड़ेगा, समझे ?"

दुष्यन्त ने विवाह के समय शकुन्तला को एक अंगूठी उपहार-स्वरूप दी थी । शकुन्तला ने सोचा,उस अंगूठी को दिखाने पर राजा की स्मृति जग जाए । उसने उंगली की तरफ़ देखा, तो अंगूठी नदारद ! उसको ख्याल हुआ, नाव की यात्रा में पानी के साथ खेलते समय संभवतः अंगूठी पानी में गिर पड़ी हो ।

इसके बाद मुनि-कुमार के साथ शकुन्तला राजसभा को छोड़ कर चली गई। दुर्वासा मुनि के प्रभाव से राजा दुष्यन्त शकुन्तला को पूर्ण रूप से भूल गया था। फिर भी शकुन्तला के मन में राजा के प्रति क्रोध नहीं, चिंता ही अधिक हुई।

अपनी पुत्री का हुआ अपमान और उसकी व्यथा को जान कर माँ मेनका स्वर्ग से पृथ्वी पर उतर आई और अत्यन्त प्रेम के साथ शकुन्तला को गले लगा लिया। अनन्तर उसे एक सुरक्षित आश्रम में पहुँचा दिया।

शकुन्तला ने वहाँ एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। शकुन्तला ने उस पुत्र का नाम 'भरत' रखा और बड़े लाड़-प्यार से उसे पालने लगी। अपनी असाधारण बुद्धि और अपूर्व साहस और पराक्रम के कारण बालभरत सब के मन को मोहित करने लगा

करनी का फल

कांतिपुर नामक गाँव के समीप एक जंगल था। वहाँ अर्धरात्रि के समय एक बूढा पिशाच एक वृक्ष की डालों में ऊँघ रहा था। अचानक वृक्ष के नीचे कोई आहट पाकर पिशाच ने आँखें खोलकर देखा। एक युवक वृक्षों के बीच अपना रास्ता ढूँढता चला आ रहा था।

पिशाच की निद्रा भंग हो गयी। इसलिये गुस्से में आकर वह बोला, "अरे, तू कौन है ? इस वक्त जब पिशाच जंगल में मीठी नींद सोते हैं, तब तुम उस में खलल पैदा करने क्यों आये हो ? क्या काम है तुम्हारा यहाँ ? तुमने मेरी नीन्द हराम की है, अब मैं तुम्हें ज़िन्दा नहीं छोड़ूँगा।"

यह आव्हान सुनकर वह युवक ज़रा भी विचलित हुए बिना बोला, "मैं भी यही चाहता हूँ। यदि तुम मेरे प्राण न लो, तो कोई न कोई खूँख्वार जानवर अवश्य लेगा ही। इसीलीये तो मैं इस घने जंगल में आया हूँ।"

यह उत्तर सुनकर पिशाच के दिल में युवक के प्रति दया पैदा हुई। वह झट पेड़ से नीचे कूद पड़ा और उसने युवक के चेहरे को परखकर देखा।

तब बोला, "तुम्हारी उम्र मेरी उम्र के सहस्त्रवे हिस्से जितनी भी नहीं है। इतनी छोटी उम्र में ही जिंदगी के प्रति तुम्हारे मन में विरक्ति क्यों पैदा हुई? बात क्या है, बताओ तो सही, मैं भी सुन लूँ।"

इसपर युवक ने अपना सारा दुखड़ा यूँ रोया—उस का नाम मुरारी है। देखनेमें वह बदसूरत है। उसने सामनेवाले घर की युवती विमला से तहे दिल से प्यार किया।

इधर विमला के लिये शादी के रिश्ते आ रहे हैं। यह ख़बर सुनकर मुरारी एक दिन शाम के समय विमला के घर गया। विमला उस वक्त बगीचे में फूल बिन रही थी।

विमला के समीप जाकर मुरारी ने कहा,

गोरखप्रसाद

"विमला, मैं तुमसे प्यार करता हूँ, बहुत दिनसे। मगर आज तक मन की बात प्रकट नहीं कर सका। तुमसे विवाह करके मैं तुम को हर प्रकार से सुख पहुँचाने का प्रयास करूँगा। मेरी बात पर विश्वास करो।"

मुरारी की बातें सुनकर विमला खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसको अपने घर के अंदर ले जाकर एक आदमकद आईना के सामने खड़ा किया और उसने पूछा, "बताओ, वह क्या है ?"

"वह तो आईना है।" मुरारी ने भोलेपन से कहा।

"तुमने आईने में कभी अपना चेहरा भी देखा है ? मेरी सुन्दरता की तुलना में तुम्हारा यह रूप किसी भी योग्य नहीं है। यह विचार कभी तुम्हारे मन को कैसे नहीं छुआ ? बड़े आये मुझ से शादी करनेवाले; चलो, अपना रास्ता नापो।" विमला ने उसका परिहास किया।

मुरारी तो अपमान के बोझ से दब सा गया। उसने सोचा कि, उसकी जिन्दगी वृथा है। और वह जंगली जानवर का शिकार बन जाएगा।

मुरारी की कहानी सुनकर पिशाच ठहाका मारकर हँसने लगा।बादमें बर्फ़ से भी अधिक ठंडी वायु उसने मुरारी पर फूँक दी। चाँदनी की रोशनी में मुरारी ने देखा कि उस के शरीर का काला रंग जाकर उसकी जगह वह शीशे जैसा चमक रहा है। फिर क्या था, कृतज्ञता भाव से उसने पिशाच को झुककर प्रणाम किया और बड़े संतोष से अपने घर की ओर चल पड़ा।

लेकिन दूसरे ही दिन व्याकुल मुरारी एक-एक कदम बढाते पिशाच के पास पहुँचा।

उसको देख पिशाच ने कहा, "तुम ठीक ऐसे समय पहुँचे, जब मैं ने अभी अभी झपकियाँ लगाना शुरु किया था। बताओ, क्या हुआ ?" कहते हुए पिशाच पेड़ से उतर पड़ा। मुरारी के चेहरे को ताकते हुए उसने पूछा, "बात क्या है ? तुम उदास क्यों हो ?"

"सौंदर्य पेट नहीं भरता, ऐश्वर्य को भी कामना करके ले आओ—यही बात विमला ने मुझे बतायी।"—मुरारी ने सुनाया।

"इसका मतलब है, कि तुमने मेरे बारे में विमला को सुनाया है ? सच है ना ?" पिशाच ने पूछा।

"बिना कहे मैं कैसे छूट सकता हूँ ? मेरे अन्दर छिपाने की कोई बात भी तो हो ?" मुरारी ने अपनी कठिनाई पेश की ।

"ऐसी बात है ? तब सुनो, मैं अपना ऐश्वर्य तुम्हें दे देता हूँ । तुम इसे ले जाकर विमला को खुश करो ।" यह कहकर पिशाच फिर पेड़ पर चढ़ गया । ऊपर पहुँचकर थैलीभर स्वर्णमुद्राएँ उसने नीचे गिरा दीं ।

मुरारी स्वर्णमुद्राएँ थैली में भरकर पिशाच को धन्यवाद देते हुए वहाँ से चल पड़ा ।

तीसरे दिन भी रातको फिर उदासी भरे मुरारी को पेड़की ओर आते देखकर पिशाच ने ज़ोर से चिल्लाकर पूछा, "अरे भाई, विमला से तुम्हारी शादी की बात तो दूर रही, लेकिन तुम्हारा इस अवस्था में रातों में मेरी नीन्द हराम करने का सिलसिला जारी है । अब फिर कौन समस्या लेकर आये हो ? विमला को क्या वह सोना पर्याप्त नहीं लगा ?"

मुरारी पेड़ के नीचे पहुँचकर लुढ़क पड़ा; और बोला, "जानते हो, विमला ने क्या कहा ? सौन्दर्य और संपत्ति के रहने से क्या हुआ; उनको सदा के लिये सुरक्षित रखने के लिये बुद्धिमत्ता तो चाहिए ! यह चीज़ तो तुम्हारे पास है नहीं ! अब जाओ और उसे भी माँग लाओ ।"

"बेचारी, तुम्हारी यह विमला तो बड़ी मूर्ख औरत है ।" यह कहकर पिशाच अट्टहास कर उठा । बाद में पेड़पर जाकर उसने डालियों को जोर से झल-झल हिला दिया ।

कुछ ही देर में मुरारी पेड़ के पत्तों से ढँक गया। पत्तों को झाड़ता हुआ वह उठ खड़ा हुआ । फिर वह पिशाच से बोला,"मैं ज़िन्दगी भर तुम्हारे उपकार नहीं भूलूँगा । आइन्दा कभी तुम्हारी नीन्द में ख़लल नहीं डालूँगा ।" यह कहकर मुरारी बड़े आत्मविश्वास भरे डग भरते हुए वहाँ से चला गया ।

चौथे दिन रात को पेड़ की तरफ़ बढ़ती हुई आकृति की ओर देखकर पिशाच ने कहा-—"आओ विमला, आ जाओ । मैं पहले ही जानता था कि तुम ज़रूर आओगी । मैं तो तुम्हारे इन्तज़ार में ही था ।"

अश्रुपूर्ण नेत्रों से विमला बोली,"न मालूम तुमने मुरारी पर कैसा जादू-टोना कर दिया है । वह तो बिल्कुल बदल गया है । आज उसने मुझसे बात नहीं की; इतना ही नहीं-मेरे चेहरे की ओर भी आँख उठाकर नहीं देखा । कुछ लोगों से वह कह रहा था कि, वह शहर में जाकर कोई व्यापार-धंधा शुरु करनेवाला है । अब तुम किसी तरह मुरारी को समझा-बुझाकर हमारी शादी करवा दो ।" यह कहते हुए विमला ने पिशाच के सामने अपने हाथ जोड़े ।

पिशाच खिलखिलाकर हंस पड़ा, फिर बोला, "वह अब तुम से प्यार करनेवाला पहले का मुरारी नहीं रहा है; अपना भला-बुरा अब वह अच्छी तरह से समझने लगा है । वह सौन्दर्य और संपत्ति के साथ अब विवेक भी रखता है । शायद अब उसने सोचा होगा कि, तुम अब उस के योग्य पत्नी नहीं बन सकोगी । तुमसे भी कहीं अधिक सुंदर व संपन्न परिवार की लड़की उसके साथ शादी के लिये अब तैयार को सकती है । बड़े मन से तुमसे प्यार करनेवाले मुरारी का तुमने तिरस्कार किया । अब वह सब कुछ रखता है और ऐसी हालत में अगर अब तुमसे शादी करने की इच्छा नहीं रही, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? यह सब तुम्हारी ही करनी का फल है, है न ?"

पिशाच की बातों में छिपी सचाई पहचानकर विमला शरम से अपना सिर झुकाकर वहाँ से लौट पड़ी ।

कृष्ण ज्यों ही कालिया के तड़ाग में कूद पड़े, त्यों ही उसमें ऐसी उत्ताल तरंगें उठीं जैसी क्षीर-सागर में मंदार पर्वत के गिरने से ऊँची तरंगें उठीं थीं और खूब हलचल मची थी। इस समय कृष्ण के कूदने से तड़ाग में ऐसी हलचल मची की वह हलचल तड़ाग के रसातल तक पहुँची। इस पर कालीय अत्यंत क्रुद्ध हो उठा। उसने क्रोध से अपने पाँचों फन फैलाकर इस प्रकार मुँह खोला कि जिसमें से उसकी कराल दाढाएँ स्पष्ट दिखाई दें। फिर उसने अपने मुँह से विषज्वालाओं को फेंकते हुए अपने वक्रगतिवाले शरीर को नदी में फैलाकर कृष्ण के शरीर पर अपने दाँतों से जहाँ तहाँ काटा। बाद में उसके शरीर को अपनी लपेट में जकड़कर कसने लगा। शरीर कस जानेसे कृष्ण बेहोश होने लगा, यह देखकर कालीय के बन्धु, पत्नियाँ व बच्चे भी कृष्ण को घेरकर उसे काटने लगे। इसके साथसाथ इस परिवार के साथ रहनेवाले अन्य सर्प भी उसमें सम्मिलित हुए।

यह दृश्य देखकर गोपबालक बहुत घबड़ा गये और वार्ता पहुँचाने के लिये दक्षिण दिशा में एक कोस की दूरी पर स्थित गोकुल की ओर दौड़ पड़े। वहाँ पहुँचते ही गोकुल के निवासियों को हाँफते-हाँफते कहा कि, "खेलते खेलते दूर जाकर बिना किसी को कहे कृष्ण यमुना के तडाग में कूद पड़े, जहाँ भयानक सर्प निवास करते हैं। कूदते ही सबसे महान सर्पने उसको अपनी लपेट में कसके पकड़ रखा है और साथ ही बाकी सभी सर्प कृष्ण को डस रहे हैं। सब लोग जल्दी चलिये और उसको सर्प से छुडाइये, जल्दी

कीजिये।" गोपाल आँखों में आँसू लाकर कहने लगे।

यह समाचार सुनते ही गोकुलवासियों को जैसे बिजली छू गयी! नन्द आश्चर्य एवं दुख से भर उठे। विकल होकर वे पूछने लगे, "क्या कह रहे हो? कहाँ है मेरा लाल?" और यह पूछते पूछते ही वे भी उन बच्चों के पीछे दौड़ पड़े।

गोकुल के बलवान युवक अपने हाथों में डंडे और हथियार लेकर नंद के साथ हो लिये। यशोदा तो वार्ता सुनकर मानो होश-हवास खो बैठी। वह चिल्लाने लगी, चीखने लगी। उसके बाल खुल गये। अन्य गोप-स्त्रियाँ उसको आधार देकर यमुना की ओर चलाने लगीं।

इस प्रकार सारा गाँव उमड़ पड़ा। कुछ लोगों ने कहा, "हम पर विपदा के बादल छाये हुए हैं।" कुछ लोग कहने लगे, "यह कृष्ण हमेशा कुछ न कुछ ख़तरा मोल लेता रहता है। कभी चुप नहीं बैठता। कुछ गड़बड़ किये बिना जैसे उसे चैन ही नहीं आता।" "वह बच्चों की-सी हरकतें नहीं करता बल्कि सदा भारी ख़तरों से जूझता रहता है।"—अन्य कुछ कह रहे थे। कुछ लोग तो और व्याख्या करने लगे—"कृष्ण ने आजतक बड़े-बड़े संकटों का सामना करके हर बार विजय ही प्राप्त की है। उसके सामने यह कालिया क्या हस्ती है!"—मगर ऐसी अलग अलग प्रकार की बातें करनेवाले सभी के सभी लोग यमुना की ओर दौड़ रहे थे।

सब लोग दौड़ते दौड़ते कालिन्दी के तटपर पहुँचे और कृष्ण को देखकर एकदम हताश हो गये। साँप की लपेट में फँसा कृष्ण बहुत ही दयनीय दीख रहा था। किसी को कुछ कहते नहीं बना, सबने हथियार डाल दिये। नंद-यशोदा तो बेहोश हो गये। बाकी लोगों ने कुछ उपचार किये और वे उनको होश में लाये।

नन्द अपने गाँववालों से कहने लगे—"न मालूम मैं ने पिछले जनम में कैसा पाप किया है, कि मेरा बेटा अब साँप का शिकार बन गया है। हर कोई यह कहकर मेरी प्रशंसा करता रहा कि मैं एक बडा पुण्यात्मा हूँ, इसी लिये ऐसे सुंदर और बल-पराक्रमी पुत्र का पिता बन गया हूँ। इसपर प्रत्यक्ष देवता भी ईर्ष्या से भर गये हैं। मेरे मन में अब भी आशा की रेखाएँ खींची जा रही हैं कि

जिसने पूतना, शकट आदि अनेक राक्षसों का संहार किया है, वह क्या इस कालिया का मर्दन नहीं कर सकता? मैं तो किसी तरह से साहस बटोर रहा हूँ, मगर अपने पुत्र की हालत देख उधर यशोदा का मातृ-हृदय जैसे तड़प रहा है। उस बेचारी की व्यथा हम कैसे दूर कर सकें?"

उधर यशोदा बोलने लगी, "बेटा, तुमने माखनचोरी की तो गोपिकाएँ तुम्हारी शिकायत करने आयीं। इसपर मैंने तुमको ओखली से बाँध रखा। अब उस अपराध की सज़ा के रूप में मुझे इस प्रकार सता रहे हो? तुम तो बड़े शक्तिशाली हो, यह यःकश्चित सर्प तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता है? क्या तुम्हें मेरे प्रति प्रेम नहीं है? मेरी ओर देखकर एक बार हँस लो बेटे। अपनी आँखें खोलकर एक बार मेरी ओर देखो बेटे। देखो, गायें कैसी अनाथ सी बनीं घास चरना छोड़कर तितर-बितर हो गयीं हैं, वे भी तुम्हारी दिशा में ताक रही हैं। विषवृक्ष से भरे जंगल को ध्वस्त करनेवाले तुमको यह सर्प किस खेत की मूली है?"

यशोदा की बातें सुनते हुए सब लोग शोक में डूब गये। सब ने यह समझकर यशोदा को सान्त्वना देनी चाही कि वह अपने पुत्र से वंचित हो गयीं हैं। कुछ गोपक तो कहने लगे—"हम सब अभी इसी वक्त कालिन्दी में कूदकर उस सर्प से लड़ेंगे और कृष्ण को सांप की जकड़ से मुक्त करेंगे, वरना हम भी कालीय की विषाग्नि में जल-भुनकर भस्म हो जाएँगे। कृष्ण को साथ लिये बगैर हम लोग लौटकर गोकुल हरगिज़ नहीं जायेंगे।"

बलराम चुपचाप खड़े ये सभी बातें देख-सुन रहे थे। अब उनको भी लगा कि यह सब तमाशा बन्द होना चाहिए। उन्होंने कृष्ण को पुकार कर कहा, "हे कृष्ण, तुम मानव आकृति में आने से लोकहित की बात भूल रहे हो। इस कम्बख़्त सर्प की पकड़ में आकर कैसे असहाय बने पड़े हो। क्या तुम यह नहीं देख रहे हो कि तुम्हारे प्रिय जन किस प्रकार हीन-दीन बन बैठे हैं? बस कर दो यह सब तमाशा! अब तुरन्त उस विषैले कीट को दण्ड देकर इन सब को चिन्तामुक्त कर डालो। इन्हें प्रसन्न बना दो।"

बलराम की यह बात सुनकर कृष्ण जैसे
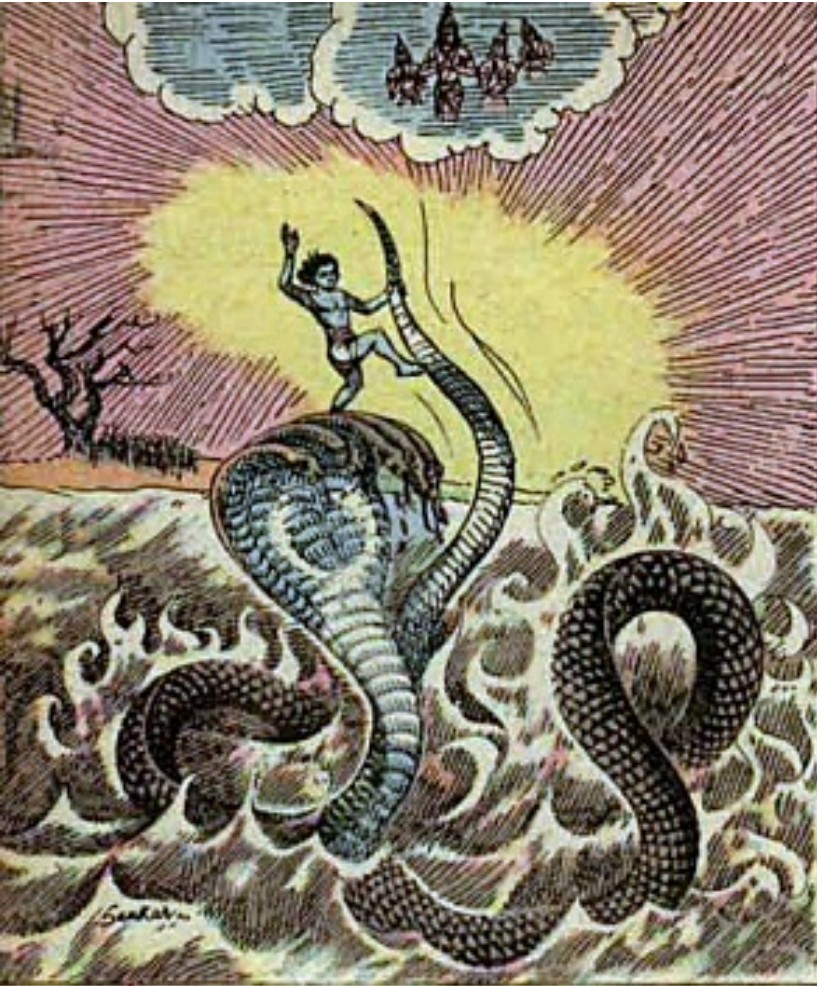
एकदम होश में आ गये और कालिया को अलग ढकेलकर स्वयं हवा में उछले। हवा में से सीधे वे सर्प की फणों पर कूद पड़े। इस के बाद सर्प की पूँछ को अपने एक हाथ में थामे उसके सिरोंपर उछल उछलकर उसका मर्दन करने लगे। उस नृत्य को देख यमुना की लहरें ताल देने लगीं। नदीतट पर खड़े गोपाल हर्षनाद करने लगे, जिसमें एक विशेष प्रकार का ताल व संगीत था। वही ताल पकड़कर कालीय के सिरोंपर अदल-बदल कर कृष्ण महानाट्य करने लगे। आकाश के देवता भी यह नृत्य नाट्य अवलोकन करने लगे।

कृष्ण जैसे ज़्यादा गति पकड़ने लगे वैसे वैसे कालिया के सिर छितरने लगे। उस के नासापुटों से खून की धाराएँ बहने लगीं, उसके दाढ़ टूटने लगे और उसके मुँहसे विषपूर्ण ज्वालाएँ निकल-निकल कर उसका विष भी खतम हो गया। आखिर वह थक कर ऐसा दयनीय दिखाई देने लगा, जैसे सूखा कमलनाल झुकता जा रहा हो। झुकते झुकते अंतमें वह मरने की स्थिति में आ गया। अब वह दीन स्वर में निवेदन करने लगा—"भगवान, मैं अज्ञानवश आप की महिमा को पहचान नहीं सका। आप तो सर्वेश्वर हैं। मैं ने क्रोध में आकर आप की पवित्र देह पर प्रहार किये। अच्छा ही हुआ—आपने मेरे अहंकार का दमन किया। अब आप कृपा करके मुझे क्षमा कीजिए। मेरा सारा विष भी उतर गया है और मेरी अकल ठिकाने लग गयी है। इसके आगे मैं आप का दास बनकर आप के आदेश का पालन करूँगा। आपके चरणों का स्पर्श पाकर मैं पवित्र हो गया हूँ। आप का क्रोध मेरे लिये अनुग्रह बन गया है।"

यह निवेदन सुनकर कृष्ण के मन में भी कालीय के प्रति दया का भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने कहा, "सुनो कालिया, आइन्दा तुम इस यमुना नदी में नहीं रह सकते। अपने परिवार सहित तुम इसी वक्त समुद्र की ओर प्रयाण करो। तुम्हारे यहाँ से चले जाने के बाद यह जल जब बह जायेगा तब नदी निर्मल होगी और जनता के लिए उपयुक्त बन जायेगी। तुम्हारे सिरपर अंकित मेरे चरणों के चिन्ह देखकर गरुड कभी भी तुम्हें हानि नहीं पहुँचाएगा। यही वरदान मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ।"

फिर क्या था! कालीय उसी समय अपने परिवार के साथ समुद्र में बसने के लिए निकल पड़ा। इसके बाद कृष्ण यमुना के जल से बाहर निकल आये। उनके मातापिता ने आगे बढ़कर उन्हें गले लगाया और उन्हें आशिर्वाद दिये। कृष्ण ने उन्हें प्रणाम किया। अन्य गोपों ने कृष्ण को घेर कर उनकी भूरि प्रशंसा की और उन के अद्भुत कार्य पर आश्चर्य प्रकट किया।

गोपकों के प्रमुख व्यक्तियों को कृष्ण एक देवता के समान दर्शित हुये। वे उनकी स्तुति करने लगे, "इतना बल, साहस और पराक्रम अन्य किसी में भी नहीं होगा। तुम्हारी महिमा सारे जगत में प्रशंसनीय है। हमारे रेवडों के और हमारे भी रक्षक तुम्हीं हो। तुम्हारी कृपा से ही हमारी गायें स्वेच्छापूर्वक सर्वत्र संचार कर सकती हैं। अब इस नदी में स्नान के लिए उतरनेवाले ऋषि-मुनियों को किसी प्रकार का ख़तरा नहीं रहेगा। तुम्हारी विशेषता को हम आजतक समझ नहीं पाये थे। तुम्हारे समाजहित के काम अद्भुत हैं।" यह कहकर सब लोगों ने कृष्ण की प्रदक्षिणा की।

कृष्ण ने उचित रूप में सब से बातचीत की और उनके साथ गोकुल लौट गये। वहाँ पहुँचकर सुखपूर्वक अपना जीवन बिताने लगे।

थोड़े दिन बीत गये। मवेशियों के लिए अब वहाँ घास नहीं रही। कृष्ण ने अन्य गोपकों के साथ इस समस्या को लेकर चर्चा की। उस वक्त एक बुज़ुर्ग ने कृष्ण को यह बात बतायी।
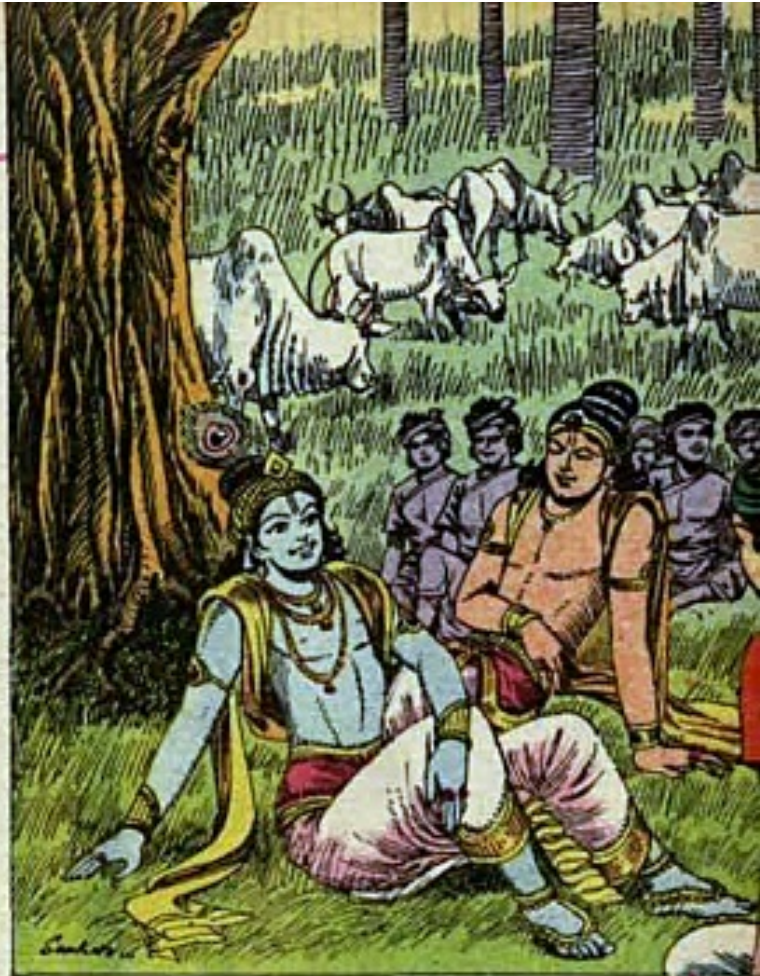
गोवर्धन गिरी की उत्तरी दिशा में कालिंदी के समीप एक अत्यन्त विशाल ताड़ का बन है। उस बन में हरी घास भरपूर है। मगर उसी वन में धनुक नाम का एक राक्षस गर्दभ के रूप में निवास करता है। इस कारण कोई भी प्राणी उस वन में घुसने का साहस नहीं करता है।

यह समाचार सुनकर बलराम और कृष्ण का उत्साह उमड़ पड़ा। उन दोनों ने कुछ साहसी गोपकों को समझाया, "हमारे जानवरों के लिए अगर चारा मिल जायें, तो क्या हम राक्षसों से भय खाकर जानवरों को भूखा रखेंगे? चलो, हम उस राक्षस का ही संहार करेंगे।" इसके बाद वे सब अपने रेवड़ों को हांककर ताड़वन की ओर निकल पड़े। वन में सर्वत्र हरी हरी घास और दूब लहलहा रही थी। जानवर बड़ी खुशीमें घास पर

टूट पड़े। कृष्ण और अन्य गोप भी बहुत प्रसन्नता से उस घास में विहार करने लगे।

उस वन की शोभा देखकर कृष्ण अतिशय प्रमुदित हुए। मानो पाताल से उगे, फण जैसे सिरों वाले वे श्याम रंग के ताड़वृक्ष नाचनेवाले सर्पों की भाँती प्रतीत हो रहे थे। दर्शकों को वे अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। उनके लाल व काले रंग के फल अपनी सुगंध हवा में फैला रहे थे। उन फलों को देखकर कृष्ण ने बलराम से कहा, "भैया, तुम पेड़ों पर चढकर फल गिरा दो। मुझे खाने की तीव्र इच्छा हो रही है। हमारी गायों को भी हम ये फल खिलाएँगे।"

"कृष्ण, पेड़ों पर चढने में काफी समय लगता है, मैं पेड़ों के तनों को हिला दूँगा। इससे जो फल जमीन पर गिरेंगे उन को तुम लोग उठा लेना।" यह कहकर बलराम एक एक पेड़ के पास जाकर उनको हिलाने लगा। टपाटप ध्वनी के साथ ताड़ के फल ज़मीन पर गिरने लगे।

फलों के गिरने की आवाज़ धेनुकासुर के कानों में पड़ी। गधे के रूप में संचार करनेवाला वह राक्षस अपनी ही आकृतिवाले एक हजार प्रचण्ड अनुचरों के साथ बलराम तथा कृष्ण पर हमला करने के लिए उनके पास पहुँचा। उन को देख सारे गोप आपादमस्तक कांप उठे।

एक साथ इतनी संख्या में गधों के चलने से जो धूल उठी इसके कारण वहाँ का सारा आकाश अँधेरे से व्याप्त हो गया। उनके रेंकने से सारी दिशाएँ गूँज उठीं। उन गधों के समूह में सबसे आगे धेनुकासुर अपनी छाती फुलाए चला आ रहा था। उसको देखते ही बलराम खाली हाथ आगे बढ़कर उसका रास्ता रोके खड़ा हो गया। धेनुक ज्यों ही बलराम के पास पहुँचा, त्यों ही उलटकर धेनुक ने अपनी पिछली टाँगों से बलराम की छातीपर लात मारना चाहा। मगर धेनुक की ऊपर उठी पिछली टाँगों को बलराम ने बड़ी फूर्ति से कसकर पकड़ लिया और उस को हवा में उछाल दिया। उसका शरीर ताड़ के पेड़ों से टकराकर चूर चूर हो गया। इसके साथ ही इस धक्के से ताड़ के फल नीचे गिर पड़े।

बलराम इससे संतुष्ट नहीं हुआ। उसने अन्य राक्षसी गधों की टाँगें पकड़कर उनको भी ताड़ वृक्षों की ओर झोंक कर उन्हें भी मार डाला। उस की देखादेखी कृष्ण ने भी वही काम आरंभ किया

और उसने भी अनेक राक्षसों को मार डाला फिर क्या था! सारा वन ताड़ के फल और राक्षसों के कलेवरों से भर गया। गोपकों ने उन दोनों भाइयों के पौरुष की प्रशंसा की। इस प्रकार राक्षसों की मृत्यु के कारण वह ताड़वन निरापद हो गया।

एक बार की और घटना है—गोपक लोग भांडीर वटवृक्ष के प्रदेश में अपनी गायों को चराते हुए अपनी खेलकूद में मस्त थे। उस समय प्रलंब नाम का एक राक्षस गोपालक का रूप धारण कर उनमें सम्मिलित हुआ। गोप बालक 'हरिण क्रीडा' नामक खेल खेलने के लिए जोडी-जोडी में बाँट गये। कृष्ण और उसका ममेरा भाई श्रीधाम की एक जोड़ी बन गयी तो गोपाल रूपी प्रलम्ब और बलराम की एक जोड़ी बनी। इस प्रकार आधे गोपाक कृष्ण के पक्ष में तो आधे श्रीधाम के पक्ष में बँटकर उन के दो गुट बन गये। खेल ऐसा था—भांडीर वटवृक्ष को सीमा बनाकर सबको हिरन जैसे कूदते हुए दौड़ना होगा। इस खेल में कृष्ण के पक्ष के लोग विजयी हुए और श्रीधाम का पक्ष हार गया। अब पराजित गुट के खिलाड़ियों का काम था—विरुद्ध पक्षीय अपनी जोडी के खिलाड़ी को अपनी पीठ पर लादकर सीमा तक ढोकर ले जाना।

इस कारण प्रलम्बने बलराम को अपनी पीठ पर उठाया और निश्चित स्थल की ओर जाने के बदले उसको दूसरी ही दिशा में ले गया। और अचानक अपनी राक्षस आकृति धारण कर बलराम के सहित आकाश में उड़ने लगा। बलराम सकते में आ गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था, कि क्या किया जाय। उसने चिल्लाकर कृष्ण को अपना हाल सुनाया। कृष्ण ने उसे चेतावनी दी, "भैया, देखते क्या हो, उसका अंत कर डालो।" दूसरे ही क्षण बलराम ने अपनी मुठ्ठी कसकर राक्षस के सिरपर पूरी ताकत से प्रहार किया। इस मुठ्ठीप्ररहार से राक्षस का सिर तत्काल फट गया, वह आकाश से नीचे आ गिरा, और मर गया। प्रलम्ब का वध करने के बाद बलराम 'बलदेव' नाम से भी पुकारा जाने लगा।

एक सिक्का

घनश्याम एक बड़ा मेहनती आदमी था। पर फिर भी मुसीबतें उसका पीछा न छोड़तीं। एक धनवान ने उसके रुपये डुबाये, दूसरे धनवान से उसने कुछ रुपया उधार लिया, तो अचानक घनश्याम की बीबी बीमार पड़ गयी। उधार लिये सारे रुपये खर्च हो गये। एक बार उसे चोरों ने लूट लिया। फिर कुछ दिन बाद मेहमानों का ताँता लग गया। कई दिन उसे कहीं काम-वाम नहीं मिला। वह सोचता रहा कि उसे क्या करना चाहिए ? जाने क्यों भगवान उस के प्रति क्यों इतना कठोर बन गया था। किसी भी काम में उसे सफलता नहीं मिलती थी। दिन-ब-दिन उस की हालत गिरती ही गई।

यों कई दिन गुज़र गये। फलस्वरूप घनश्याम कर्ज़दार बन गया। कभी-कभार कहीं ज़्यादा पैसे मिले, तो वे सूद में चले गये।

अब घनश्याम के मन में जीवन के प्रति विरक्ति पैदा हुई। एक दिन अपनी पत्नी को बताये बिना घर से निकला। गाँव के बाहरवाले तालाब में कूद कर मरने का उसने निश्चय किया।

रास्ते में उसे एक संन्यासी के दर्शन हुए। घनश्याम को देखकर संन्यासी ने कहा—"सुनो भाई, मैं बड़ी दूर से आ रहा हूँ। मेरे पैर दुख रहे हैं, अगर थोड़ी देर पैर दबाओगे जो मुँहमाँगा इनाम दूँगा !"

घनश्याम के मन में संन्यासियों के प्रति श्रद्धा और भक्ति थी। इस लिए उसने निश्चय किया, संन्यासी की भरसक सेवा करके फिर मरना चाहिए। उसने प्रार्थना स्वीकार करते हुए कहा—"स्वामिन्, मैं अवश्य आप की चरण-सेवा करूँगा। पर उसके बदले में मैं कुछ नहीं चाहूँगा। लोभ में पड़कर मैं आप की सेवा नहीं करना चाहता। आप के आशीर्वाद मेरे लिए काफ़ी है।"

"वसुन्धरा"

संन्यासी सड़क के किनारे एक वृक्ष की घनी छाया में आराम करने के लिए लेट गया। घनश्याम ने थोड़ी देर उसके पैर दबाये। संतुष्ट होकर संन्यासी ने कहा—"बेटा, तुम जो माँगो, मैं तुम्हें दे दूँगा। लोभ की कोई बात नहीं। लगता है तुम बड़े दुखियारे हो। तुम्हारे दुख कुछ हद तक मैं दूर कर सकूँगा। जो तुम्हारे मन में है, माँगो।"

"स्वामीजी, मैं कुछ नहीं माँगना चाहता। थोड़ी ही देर में मैं मरनेवाला हूँ। पिछले कई दिन मुसीबतों के मारे मैं बहुत परेशान रहा। किसी काम में मुझे यश नहीं मिला। थोड़ा-सा कर्ज़ा लिया ज़रूर। सूद ही देता रहा। मूल रक़म देना बनता ही नहीं, मैं ज़िंदगी से उकता गया हूँ। इन सब मुसीबतों से बचने का एक मात्र उपाय मुझे नज़र आता है—मौत! मैं ने आत्महत्या करने का दृढ निश्चय कर लिया है।" घनश्याम ने अपनी बात बतायी।

उसका सारा समाचार जानकर संन्यासी ने समझाया—"मैं तुम्हारी ग़रीबी दूर कर दूँगा। यह ले लो।" कहकर उसने अपनी झोली में से थोड़ा भस्म दे दिया।

घनश्याम ने निराश होकर कहा—"स्वामिन्, बड़े लोगों ने मुझे जो धन दिया उससे मेरी दरिद्रता नहीं मिटी। यह भस्म लेकर मैं क्या करूँगा?"

"तुम्हें लक्ष्मी की कृपा प्राप्त नहीं है। तुम दस दिन तक देवी लक्ष्मी की तस्वीर की पूजा करो, तुम्हारे सब दुख दूर हो जाएँगे।" संन्यासी ने मुस्काते हुए कहा।

घनश्याम खुश हुआ, पर उसे एक संदेह भी हुआ। संन्यासी ने मुट्ठी भर जो भस्म दिया है, उस से दस दिन तक पूजा-अर्चना कैसे की जाए। यह तो एक-दो दिनों में ख़तम हो जाएगा।

उसका संदेह जानकर संन्यासी ने उसे समझाया—"मैं ने तुम्हें जो भस्म दिया है, वह मामूली भस्म नहीं, बड़ी पवित्र वस्तु है। उसमें एक असाधारण महिमा है। पूजा में उसका चाहे जितना प्रयोग करो, यह घटेगा नहीं, अक्षय बना रहेगा। दरिद्रता के कारण कोई पीड़ित हो तो उसे भी यह भस्म देकर उसकी मदद करो। मगर एक बात ध्यान में रखो। लालच में पड़कर जो इस

का उपयोग करेगा, वह सब कुछ खो बैठेगा। आखिर उसके पास केवल भस्म बचेगा।"

इसके बाद घनश्याम ने संन्यासी को प्रणाम किया और भस्म लेकर खुशी खुशी घर पहुँचा। सारा वृतान्त उसने अपनी पत्नी को कह सुनाया। पत्नी भी बहुत खुश हो गई और उसने एक ताँबे के बर्तन में भस्म को सुरक्षित रखा। लेकिन उनके घर में पूजा के लिए लक्ष्मी की तस्वीर नहीं थी। सामनेवाले घर में एक धनी परिवार रहता था। घनश्याम लक्ष्मी की तस्वीर माँगने उस घर गया।

परिवार के मुखिया ने घनश्याम को घर के भीतर से लक्ष्मी की तस्वीर लाकर देते हुए कहा—"देखो, एक साल पहले इस तस्वीर पर नया शीशा चढ़ाया था, वह टूट गया। मुझे डर है कि तुम भस्म चढ़ाकर मेरी तस्वीर खराब कर दोगे। ऐसा हुआ तो तुम्हें मुझे नई तस्वीर देनी पड़ेगी।

घनश्याम ने यह शर्त मान ली और तस्वीर लेकर अपने घर गया। सारी बातें सुनकर पत्नी बोली—"हो सकता है ऐसी अच्छी तस्वीर हमें फिर न मिलेगी। फिर ऐसी सुंदर तस्वीर पर भस्म फूँक कर-उसे खराब करना कहाँ की भलमानसाहत है! हमें तो इसकी रक्षा करनी चाहिए। हम इस पर नया शीशा चढ़वा दें तो?"

घनश्याम तस्वीर लेकर शीशा मढ़नेवाले की दूकान पर पहुँचा। दूकानदार ने घनश्याम से कहा—"तुम मुझे एक सिक्का दो या मेरे घर लगातार दस दिन काम करो, तब मैं इस तस्वीर पर शीशा चढ़वा दूँगा। बिना पैसों के मैं कोई काम नहीं करता। उधार देना मुसीबत मोल लेना है। लोग काम करवा लेना जानते हैं, किए काम

का पैसा देना नहीं। मेरे अब तक के अनुभवों का सार यही है—घर में भूखे रहो, मगर किसी को उधार मत दो।"

दूकानदार की शर्त सुनकर घनश्याम ने उसके घर काम करना शुरू किया, क्योंकि उसके पास सिक्का नहीं था। दूकानदार ने घनश्याम से लगातार पाँच दिन काम लिया। फिर कहा—"सुनो, फिलहाल मेरे घर में काम नहीं है, तुम दो दिन बाद फिर आ जाना।"

दो दिन बाद घनश्याम फिर उसके घर पहुँचा। दूकानदार ने उस को अपनी शर्त याद दिलाई—"याद रखो, मेरी शर्त थी कि तुम्हें लगातार दस दिन तक काम करना चाहिए। लेकिन पाँच दिन काम करके फिर दो दिन तुमने काम नहीं किया। इस लिए तुम को आज से लगातार दस दिन काम करना होगा। तभी जाकर मैं तुम्हारी तस्वीर पर शीशा चढ़ा दूँगा।"

इस अन्याय को देखकर घनश्याम झल्ला उठा। दूकानदार ने पूछा—"तुम क्यों बिगड़ रहे हो? शर्त शर्त ही है। पाँच दिन काम करने के बाद तुमने दो दिन काम नहीं किया। इस लिए तुम्हें आज से लगातार दस दिन काम करना होगा। तभी मैं तुम्हारी तस्वीर पर शीशा चढ़ा दूँगा।"

घनश्याम जान गया कि दूकानदार की शर्त के अनुसार काम पूरा करना इस जीवन में संभव न होगा। यों सोचकर घनश्याम एक सिक्के के लिए किसी और व्यक्ति के पास पहुँचा।

उसने कहा—"मेरे घर के पिछवाड़े में साँपों की बाँबी है। उस में बहुतेरे नाग भरे पड़े हैं। उस बाँबी को खोदकर उन साँपों को मार डालोगे तो मैं संतोष से तुम्हें एक सिक्का दूँगा।"

"मुझ से यह काम नहीं बनेगा। किसी सँपेरे को बुलवा लेना।" घनश्याम ने कहा।

"तब मैं सँपेरे को ही सिक्का दूँगा। तुम्हें क्यों दूँ?" उस आदमी ने कहा।

"यह तो बड़ा अन्याय है।" घनश्याम ने कहा।

"तुम्हारे मकान के सामनेवाले घर में रहनेवाला आदमी धनी है। पर वह भी एक सिक्का देकर साल भर में तस्वीर पर शीशा नहीं चढ़वा पाया। मैं अमीर नहीं हूँ। मैं कहाँ से तुम्हें सिक्का दे सकता हूँ?" उसने पूछा।

लाचार होकर आखिर घनश्याम एक महाजन के पास पहुँचा ।

महाजन माणिकराम बड़ा दुष्ट था। घनश्याम की बातें सुनकर उसने अपनी शर्त रखी—"मैं अभी तुम्हें एक सिक्का देकर तुम्हारी मदद करूँगा। परंतु मेरी शर्त है कि तुम्हें एक महीने की अवधि में कर्ज़ चुकाना होगा। सूद के रूप में एक सिक्के के लिए और एक सिक्का देना होगा। यह नहीं बना, तो तुम्हें और तुम्हारी पत्नी को जाओ, महाजन माणिकराम की शर्त मंजूर कर लो।"

घनश्याम को यह शर्त मंजूर नहीं हुई। घर लौट कर उसने अपनी पत्नी को सारा किस्सा सुनाया। ढाढ़स बंधवाते हुए पत्नी ने उसे समझाया—"अब यह सिद्ध हो गया है कि कोई मानव हम को बचा नहीं सकता, अब भगवान् ही का भरोसा! अगर संन्यासी की बातें सच हैं तो दस दिनों के अन्दर हमारी ग़रीबी दूर हो जाएगी। जाओ, महाजन माणिकराम की शर्त मंजूर कर लो।"

घनश्याम ने महाजन से एक सिक्का लेकर शीशा मढ़नेवाले को दे दिया। उसने तुरन्त शीशा मढ़कर दे दिया। घनश्याम ने लगातार दस दिन संन्यासी की दी हुई विभूति से लक्ष्मी की पूजा की। अंतिम दिन शाम को जब वह अपने घर के पिछवाड़े पौधों में अलाव बना रहा था, तो उसकी कुदाल किसी सख्त वस्तु से टकरायी। वहाँ पर खोदकर देखा तो उसे गड्ढे के भीतर से सोने के सिक्कों से भरे दो बर्तन निकल आये।

बस, अब क्या था? घनश्याम की ग़रीबी का

अंत हुहा। उसने अपने सारे कर्ज़ चुकाये। तस्वीर पर से शीशा उतरवाकर उसे सामनेवाले धनी को लौटाया गया।

यह देखकर तस्वीर के मालिक ने आश्चर्य से पूछा—"शीशे के साथ तस्वीर वापस करते तो तुम्हारी संपत्ति घट जाती क्या ? मैंने नहीं सोचा था कि तुम इतने स्वार्थी हो।"

घनश्याम ने विनम्र स्वर में कहा—"महाशय, आप अपने धन से लक्ष्मी की तस्वीर पर शीशा चढ़वाकर उसकी पूजा करेंगे तो उस का पूरा फल आप को प्राप्त होगा। पूजा शुरू करने के पहले आप मुझे इसकी सूचना देंगे तो मैं आप को महिमावाली विभूति दे दूँगा।"

इस पर धनी आदमी ने क्रोध में आकर कहा—"जिन्हें धन की ज़रूरत नहीं ऐसे लोग अगर पूजा करें तो उनकी सारी संपत्ति स्वाहा होकर बभूत बन जाती है,यह भी तुम जानते हो ? क्या तुम्हारी यही चाह है कि मेरी संपत्ति भस्म हो जाए ? तस्वीर देने के बदले में यही तुम्हारी कृतज्ञता है ?"

घनश्याम ने उसे समझाया—"महाशय, तस्वीर का शीशा टूट गया है तो आपने एक साल बीतने पर भी उस पर नया शीशा नहीं चढ़वाया। मैंने तस्वीर उधार माँगी तो भी आप ने उस पर शीशा नहीं मढ़वाया। इसलिए मुझे लगा कि आप ग़रीब ही है।"

धनी को लगा जैसे उस का सिर काट दिया गया है। वह जानता था कि एक सिक्के के लिए घनश्याम ने कैसी मुसीबतें उठाई थीं।

इस अनुभव से धनी ने एक सबक़ सीखा। किसी की सहायता करनी हो तो इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपनी सहायता दूसरों को तत्काल लाभदायक हो।

अपने अनुभव के आधार पर घनश्याम ने जान लिया कि ज़रूरत के समय एक सिक्के के लिए आदमी को कैसे परेशानी उठानी पड़ती है। वह भरसक हरेक़ की सहायता करने लगा और अनेक वर्षों तक सुखी रहा।
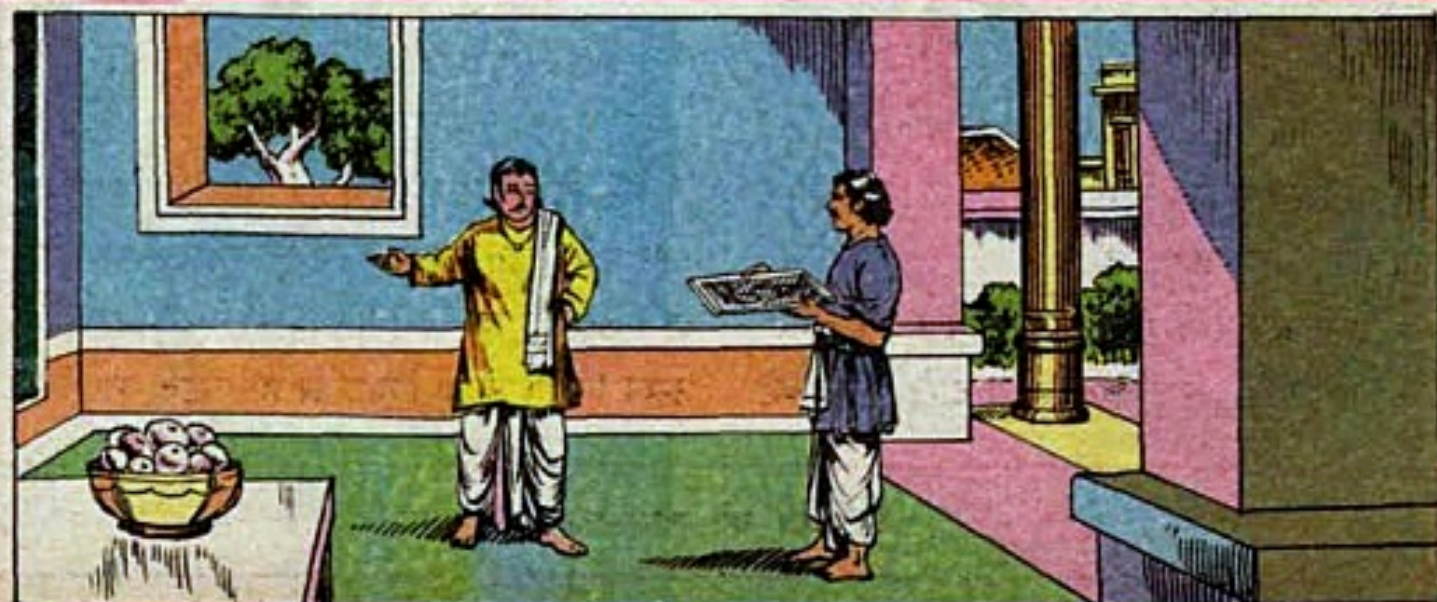
डाकू का उपहार

काश्मीर देश में एक कुलीन पंडित रहा करता था। एक ज़मीन्दार के वंश में वह पैदा हुआ था, लेकिन पंडित के पूर्वजों ने पानी की तरह पैसा बहाया और सारी संपत्ति ख़र्च कर दी। इस कारण अब पंडित की माली हालत नाज़ुक हो गयी थी। फिर भी अपनी हालत दूसरों पर प्रकट न हो, इस विचार से अपनी हालत छिपाता रहा। ज्यों-त्यों पारिवारिक ख़र्च चला लेता।

इस पंडित के एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी। उसके साथ विवाह करने के लिए कई युवक आगे आए। पंडित अपनी पुत्री का विवाह संपन्न करने की स्थिति में न था। पर यह बात कोई जानता नहीं था। सब लोग यही समझते थे कि पंडित जिस मकान में रहता है उसके तल-गृह में ख़ज़ाना गड़ा हुआ है।

इसी भ्रम के कारण सुन्दर नामक एक व्यक्ति के साथ पंडित की शत्रुता हुई। दोनों पहले बड़े अच्छे दोस्त थे। एक बार सुंदर ने पंडित से खासी अच्छी रक़म उधार माँगी। पंडित ने बड़ी चतुराई से अपनी असमर्थता प्रकट की। कहा—"आज कल मेरी हालत बहुत ख़राब है। गृहस्थी के रोज़ के खर्चे भी बड़ी मुश्किल से चलते हैं। कभी हम लोग अमीर थे अवश्य, आज हालत बहुत गिर गई है। अगर इस समय मैं तुम्हारी मदद कर सकता तो मुझे अतीव प्रसन्नता होती। पर विवश हूँ कि आज तुम्हें देने लायक़ मेरे पास कुछ भी नहीं है। मानता हूँ, तुम ग़लत नहीं समझोगे।" पर सुंदर ने सोचा कि उसे उधार न देकर उसका अपमान किया गया है। उसने बदला लेने की सोची।

इस विचार से सुन्दर ने एक डाकू से दोस्ती की और उसे पंडित की सारी संपत्ति लूटने की सलाह दी। डाकू ने खुशी से पंडित की बात मान ली। उसने निश्चय किया कि शीघ्र ही पंडित का सारा

काश्मीर की लोक-कथा

ख़ज़ाना खाली कर दिया जाए। वह अपनी योजना बनाने लगा।

एक दिन रात को पंडित सोने चला तो उसकी पत्नी ने उस से पूछा—"अजी, हमारी बेटी की शादी के लिए रिश्ते आ रहे हैं, हमारे अनुकूल एकाध रिश्ता आप पक्का क्यों नहीं कर देते ? मैं समझती नहीं आप इस तरफ़ क्यों ज़रा भी ध्यान नहीं देते ?" दरअसल पंडित की पत्नी भी उसकी वास्तविक स्थिति से परिचित नहीं थी।

पंडित ने अपनी सच्ची हालत बताते हुए पत्नी से कहा—"तुम ठीक कह रही हो, पर असल में मेरे पास धन नहीं के बराबर है। इधर कुछ दिन झूठी प्रतिष्ठा के पीछे पड़कर मैं अपनी हैसियत से ज्यादा ख़र्च करता रहा। अब हालत ऐसी है कि हमारी गृहस्थी की गाड़ी चलाने के लिए कहीं से पैसा उधार लाना पड़ेगा। ऐसे में बिटिया की शादी के बारे में कैसे सोच सकता हूँ ?"

"उफ़, यह हमारी कैसी दुर्गति हो गई है ! इतने बरसों तक संपन्न स्थिति में रहकर अब क्या दरिद्रता का सामना करना होगा ?" कहकर पंडितानी सिसकने लगी। पंडित भी अपने उमड़ते दुख को रोक नहीं पाया।

डाकू ओट में खड़ा पति-पत्नी का यह सारा वार्तालाप सुन रहा था। उस रात पंडित को लूटने के विचार से वह घर में घुसा था। डाकू को सुन्दर पर बड़ा क्रोध आया कि उसने पंडित के बारे में झूठा समाचार उसे दिया। वह उस घर से खिसकने का मौक़ा ढूँढ रहा था। पंडित और उसकी पत्नी के सो जाने पर वह चुपके से घर से बाहर निकला।

दूसरे दिन बड़ी देर तक सुन्दर ने डाकू की प्रतीक्षा की, पर वह आने से रहा। उलटे उसे पता चला किसी ने उस के घर को लूट लिया है। उस के घर के सारे गहने-ज़ेवर चोरी हो गये थे।

पंडित और उसकी पत्नी की नींद टूटी तो उन्होंने अपने सिरहाने गहनों से भरी एक थैली देखी। खोल कर देखा कि थैली में बहुतेरे गहने और चाँदी के सिक्के हैं। थैली में एक काग़ज़ मिला, जिस पर लिखा था—

"आपकी कन्या के विवाह के लिए एक डाकू द्वारा समर्पित एक छोटा-सा उपहार !"

दुलहिन

एक गाँव में एक जागीरदार रहता था। उसका महल बहुत बड़ा था। सोने व चाँदी के गहने-बर्तन काफ़ी मात्रा में थे। लहलहाते खेत थे।—सब प्रकार से संपन्न था वह। उस के घर में किसी बात की कमी थी तो इतनी ही कि,—उंसकी पत्नी का देहान्त हो गया था।

एक दिन पडोस में रहनेवाली, एक किसान की बेटी उस के महल में काम करने आयी। वह युवती बहुत ही सुंदर थी। अपना काम वह बड़ी फुर्ती के साथ कर रही थी—काम करते करते कुछ गुनगुना भी रही थी। जागीरदार उसकी ओर आकृष्ट हुआ।

उसने सोचा कि यह गरीब परिवार की कन्या उसके साथ शादी करने को तैयार होगी—बस, पूछने की ही बात है।

जागीरदार के नाम पूछने पर उसने अपना नाम 'गौरी' बताया।

गौरी से बात चलाते हुए जागीरदार ने कहा, "मैं फिर से शादी की बात सोच रहा हूँ।"

"ओह, ऐसी बात है जी ?" प्रकट रूप में गौरी ने कह तो दिया; मगर अपने मन में सोचा—'इस बूढ़े के लिये, अब शायद शादी की ही कमी रह गयी।'

"हाँ, मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ।" जागीरदार ने झट प्रस्ताव रखा।

"मुझ से ? मेरे साथ आपको शादी नहीं करनी चाहिये।" गौरी ने धीरे से कहा।

जगीरदार की बात गौरी ने नहीं मानी—इस-पर उसे गुस्सा आया।

फिर भी उसने हठपूर्वक बारबार गौरी से शादी करने की अपनी गहरी इच्छा प्रकट की—उसें मनाना चाहा। फिरभी गौरी ने जागीरदार के साथ विवाह करने से साफ़ इन्कार किया।

जागीरदार ने अब सोचा कि इस लड़की से

चन्दामामा में २५ साल पहले प्रकाशित कहानी

पुनःपुनः बात करने पर भी कोई नतीज़ा नहीं निकला । तब उसने गौरी के बापको—उस किसान को बुलवा लिया । उससे कहा,"देखो, तुम अपनी कन्या को मेरे साथ शादी करने के लिये मनवा लो, तो मैं तुम्हारा पूरा कर्ज़ माफ़ कर दूँगा । साथ ही मेरा एक खेत जो तुम्हारी ज़मीन से सटा हुआ है, वह भी मैं तुम को सौंप दूँगा ।"

"मेरी गौरी तो अबोध है । वह अपना भला-भी नहीं जानती । मैं उस को मना लूँगा ।" इस प्रकार वचन देकर किसान घर लौट आया । मगर साम-दाम-दण्ड के उपाय से भी अपनी बेटी को शादी के लिये मनवा न सका । गौरी ने तो सीधे कह दिया कि जागीरदार अपने वज़न के बराबर सोना दे, तब भी वह उससे शादी नहीं करेगी ।

दिन बीतते गये । किसान से उत्तर पाने की प्रतीक्षा करते करते जागीरदार ऊब गया । उसने फिर किसान को बुलवाकर पूछा,"तुमने अपनी पुत्री को शादी के लिये मनवाने का वचन दिया था । आख़िर मैं कितने दिन इंतज़ार करूँ ? जल्दी फ़ैसला कर दो ।"

किसान की समझ में कुछ नहीं आया । उसने कहा,"मेरी तरफ़ से कोई देरी नहीं । आप जल्दी ही शादी की तैयारियाँ कीजिए ।"

"क्या गौरी ने मान लिया ?" जागीरदार ने पूछा ।

"उस के मानने न मानने से क्या मतलब ? आप मुहूर्त तय कीजिए और मुझे ख़बर दीजिए । आप के घर किसी ज़रूरी काम का बहाना कहकर मैं उसे आप के घर भेज दूँगा । आप झट उसे मंगालसूत्र पहना दीजिए ।" किसान ने उपाय बताया ।

यह उपाय जागीरदार को बड़ा अच्छा लगा । उसने शादी की तैयारियाँ करवाईं । रिश्तेदारों व मित्रों को निमंत्रण-भेजे । पुरोहित व बाक़ी लोग सब शादी के दिन तैयार हो बैठे रहे । अब जागीरदार ने अपने एक नौकर को बुलाकर आदेश दिया,"सुनो, तुम हमारे पड़ोस में रहनेवाले किसान के घर जाओ । उसने कुछ भेजने की बात कही थी, उसको साथ लेते आओ ।"

नौकर किसान के घर जाकर बोला,"अजी

साहब, प्रणाम। आपने हमारे साहब के घर कुछ भेजने की बात कही थी, उन्होंने इसी समय उसे साथ ले जाने के लिये मुझे भेजा है।"

"देखो, वह उस बंजर में है; अपने साथ ले जाओ।" किसान ने कहा।

नौकर उस बंजर की ओर दौड़ पड़ा। वहाँ पर घास काटनेवाली गौरी को देखकर उसने पूछा,"हमारे जागीरदार-साहब के घर शादी है। तुम्हारे पिता ने कुछ भेजने को कहा। मैं उसे साथ ले जाने आया हूँ।"

असली बात गौरी भाँप गयी। उसने ताड़ लिया कि उसके पिता व जागीरदार मिलकर ज़रूर कोई चाल चल रहे हैं। फिर प्रकट रूप में नौकर से वह बोली,"ओह, शायद तुम्हारे काले घोड़े का बछड़ा होगा। लो देखो, बाड़ी के उस पार बंधा हुआ है, रस्सी छोड़कर ले जाओ उसे।"

नौकर बाड़ी के पास पहुँचा। काले घोड़े के बछड़े को खोल दिया और उस पर सवार होकर उसे सरपट दौड़ाते जागीरदार के घर ले आया।

नौकर को देखते ही जागीरदार ने पूछा,"अरे लाये कि नहीं ?"

"जी,लाया हूँ जी। दरवाज़े के पास है।" नौकर ने कहा।

"अच्छा, जल्दी उसे ऊपरी मंजिल पर ले जाओ।" जागीरदार ने आदेश दिया।

"क्या कहा जी ? ऊपरी मंजिलपर ? कहीं, यह मुझ अकेले से होगा जी ?" नौकर ने विस्मय में आकर पूछा।

जागीरदार ने सोचा कि, दुलहिन हठ कर रही होगी, इसलिये मदद के लिये और एकाध व्यक्ति

को भेजना उचित होगा। तब उसने कहा, "अरे, तुम अकेले से नही बनता, तो एकाध और नौकर को साथ लेते जाओ। पर देखो, जल्दी काम हो जाना चाहिए।"

फिर ऐसे हुआ—नौकर तथा कुछ और लोग मिलकर टट्टू को आगे खींचते और पीछे से धकेलते किसी प्रकार सीढ़ियाँ चढ़ाकर ऊपरी मंजिल पर ले गये।

"ऊपर पहुँचा दिया जी, बड़ी मुसीबत हुई।" नौकर ने आकर कहा।

"अरे, तुम्हारी मेहनत बेकार जाएगी। औरतों से कहो कि, वे उस को सजा दें।" जागीरदार ने कहा।

"यह क्या कह रहे हैं मालिक ? " नौकर ने आश्चर्य में आकर कहा।

"अरे, तुम अब कुछ न कहो। अब समय भी ज्यादा नहीं है,। उसको साड़ी पहनाकर गहनों से अलंकृत करो। माला और मंगलसूत्र की बात न भूलना।" जागीरदार ने कहा।

नौकर ने दासियों से जाकर कहा, "सुनो, तुम सब टट्टू को दुलहिन की तरह सजा दो। यह मालिक की इच्छा है। जो लोग इसे देखने आयेंगे, हंसी के मारे उनके पेट में बल पड़ना चाहिए।"

दासियों ने टट्टू को सजाकर दुलहिन बनाया। नौकर ने नीचे जाकर अपने मालिक से कहा, "हुजूर, सब कुछ तैयार है।"

"शबास ! अब देखते क्या हो ? जल्दी उसको नीचे ले आओ।" उत्साह में आकर जागीरदार ने कहा।

जब घोड़ा सीढ़ियाँ उतरकर आँगन में आया, तब सभी अतिथि और अन्य निमंत्रित लोग खिखिलाकर हँस पड़े। धीरे धीरे यह हँसी कोलाहल में बदल गयीं। इस प्रकार जागीरदार की दूसरी शादी शुरू होने से पहले ही समाप्त हो गई।

शादी में आये लोग हँसी-मज़ाक करते अपने अपने स्थानों को लौट गये।

इसके बाद बेचारे जागीरदारने फिर कभी दूसरा विवाह रचने का नाम ही नहीं लिया।

छोटा मुँह–बड़ी बात

रॉबिन पक्षी १४ इंच (४.२६ सें.मी.) लंबे कीड़ों को खाता है। वह बारह घंटों में अपने शरीर से ४१ प्रतिशत अधिक वजन का आहार लेता है।

ऊँची पर्वतश्रेणियाँ

विश्व की बीस ऊँची पर्वतश्रेणियों में तेरह पर्वतश्रेणियाँ हिमालयों में और बाक़ी सात काराकोरम के पर्वतों में हैं।

ऊँचे उड़नेवाले कौए

लाल पैरोंवाले कुछ कौए समुद्रतल से ८,२०० मी. (२६,९०२ फुट) की ऊँचाई पर निवास करते हैं। एवरेस्ट पर्वत का आरोहण करनेवाले लोगों के साथ साथ ये कौए भी अक्सर उड़ते रहते हैं।

स्पांज

स्पांज नामक समुद्री काई वास्तव में किसी समय के सैकडों सूक्ष्म समुद्री प्राणियों का समूह है। समुद्रतल में तथा चट्टानों पर ये प्राणी दल बनाकर रहते हैं। इस स्पांज की लंबाई एक मि. मी. से एक मीटर तक होती है।

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जून १९८८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

S. G. Seshagiri

M. Natarajan

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ अप्रैल १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

फरवरी के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : हंसो हरदम!

द्वितीय फोटो : करो न गम!!

प्रेषिका: बेबी रूपा, द्वारा बाबूलाल पटेल, मु. पो. मानिकपुर, जि. रायगढ़ (म. प्र.)

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा : रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता :

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास - ६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये :

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

राम और श्याम
पारले
की सूझबूझ का कमाल
पड़ोस के बैंक की ओर निकले राम और श्याम, अपनी हफ्ते भर की बचत का करने सुरक्षित इंतज़ाम. रास्ते भर वे चूसते रहे रसीली पॉपिन्स, जी भर...
मम म... पॉपिन्स!
झटके से आया एक स्कूटर जिस पर थे दो लुटेरे सवार, रोका, घुसे बैंक में और किया गोलियों से वार... धांय धांय!
अरे!
BANK
बैंक के हमारे दोस्तों की जान है खतरे में, चलो जल्दी कुछ करें.
बैंक के पिछले दरवाजे से घुसे राम और श्याम.
दंग रह गए राम और श्याम.
हैंड्स-अप!
हमारे हवाले कर दो सारी रकम!
चलो इन्हें मज़ा चखाएं!
दबे पांव राम और श्याम लुटेरों के पीछे पहुंचे, पॉपिन्स के बंद पैक उनकी पीठ पर बंदूक की तरह कोंचे.
हैंड्स-अप!
घबरा गए लुटेरे, तुरंत बंदूक फेंकी, राम और श्याम ने इनके चारों तरफ बांध दी रस्सी.
शाबाश राम और श्याम!
कैसे जुटायी इतनी हिम्मत?
ये तुम्हारी सूझबूझ का है कमाल!
ये तो है हमारे पॉपिन्स पैक की करामात
पारले
पॉपिन्स
POPPINS
रसीली.प्यारी.मज़ेदार.
everest/86/PP/413-hn